30. युद्ध ताओ के विरुद्ध है

1. *Whosoever in true DAO helps a ruler of men*
   does not rape the world by use of arms,
   for actions return onto one's own head.

2. *Where armies have dwelt thistles and thorns grow.*
   Behind battles follow years of hunger.

3. *Therefore the competent seeks only decision, nothing further.*
   He does not dare conquer by force.
   Decision without boasting;
   decision without glorifying;
   decision without arrogance;
   decision because it cannot be helped;
   decision removed from force.

अनुवाद

1. *ताओ के अनुसार जो शासक को मंत्रणा देता है,*
   वह संसार पर शस्त्र-बल के प्रयोग से बलात नहीं करता,
   क्योंकि सारे कर्म कर्ता के सिर पर वापस लौटते हैं।

2. *जहां सेनाएं रुकती हैं, वहां कटीली झाड़ियां उगती हैं।*
   युद्ध के पीछे आने वाले वर्षों में भुखमरी फैलती है।

3. *अतएव,*
   सुयोग्य व्यक्ति केवल निर्णय देखता है, और कुछ नहीं।
   वह शस्त्र बल से विजय नहीं चाहता।
   वह निर्णय लेता है बिना गर्व के,
   वह निर्णय लेता है बिना गौरव के,
   वह निर्णय लेता है बिना घमंड-प्रदर्शन के,
   वह निर्णय लेता है क्योंकि यह उसकी विवशता थी,
   निर्णय बल से सर्वथा असंपृक्त।

भावार्थ—1. जो विश्वसत्ता के नियमों के अनुसार शासक को राय देता है, वह यह नहीं कहता कि शस्त्र-शक्ति से संसार पर जबर्दस्ती कब्जा कर लेना

चाहिए। क्योंकि करने वाले पर उसके सारे कर्म लौटते हैं।

2. जहां सेनाएं पड़ाव डालती हैं, वहां कटीली झाड़ियां उगती हैं। युद्ध के पीछे के वर्षों में भुखमरी फैलती है।

3. इसलिए, अच्छी समझ वाला केवल सही निर्णय पर दृष्टि रखता है, अन्य बातों पर नहीं। वह हथियार के जोर से विजय नहीं चाहता। वह घमंड और बड़प्पन से रहित होकर निर्णय लेता है। वह अपने अहंकार का प्रदर्शन नहीं करता। उसका निर्णय लेना एक मजबूरी होती है। उसके निर्णय में बल प्रयोग नहीं रहता।

भाष्य—ताओ के अनुसार जो शासक को मंत्रणा देता है, वह संसार पर शस्त्र-बल के प्रयोग से बलात नहीं करता; क्योंकि सारे कर्म कर्ता के सिर पर वापस लौटते हैं। ताओ है विश्वसत्ता का नियम। दुख देने से दुख मिलता है यह विश्वसत्ता का नियम है। हम अपनी हिंसा नहीं चाहते, इसलिए दूसरे की हिंसा करना मानवता के नियम-विरुद्ध है। विश्वसत्ता के नियम में जड़-प्रकृति का नियम, मानवीय नियम, नैतिक नियम सब आते हैं। जीयो और जीने दो, यह प्रकृति का नियम है। अतएव हिंसा का रास्ता अच्छा नहीं है।

जहां सेनाएं रुकती हैं, वहां कटीली झाड़ियां उगती हैं। युद्ध के पीछे आने वाले वर्षों में भुखमरी फैलती है। जहां सेनाओं का पड़ाव होगा वहां खेती नहीं हो सकती, अतएव वहां कटीली झाड़ियां उगती हैं। खेत बंजर होता है। युद्ध के बाद देश कंगाल हो जाता है। क्योंकि देश की शक्ति युद्ध में लग जाती है और युद्ध से धन-जन का विनाश होता है। ऐसी स्थिति में भुखमरी फैलती ही है।

अतएव, सुयोग्य व्यक्ति केवल निर्णय देखता है, और कुछ नहीं। वह शस्त्रबल से विजय नहीं चाहता। वह निर्णय लेता है बिना गर्व के। वह निर्णय लेता है बिना गौरव के। वह निर्णय लेता है बिना घमंड-प्रदर्शन के। वह निर्णय लेता है क्योंकि यह उसकी विवशता थी। निर्णय, बल से सर्वथा असंपृक्त। यह सबका अर्थ है कि यदि देश पर हमला की संभावना हो तो देश का शासक युद्ध के लिए निर्णय लेता है, क्योंकि यह उसकी विवशता है। किंतु वह जहां तक बनता है शत्रुपक्ष को डरा-धमकाकर उसे रोकने का प्रयास करता है। युद्ध में मनुष्य मारे जाते हैं, वे अपने देश के हों या दूसरे देश के हों, सब तो मनुष्य हैं। मनुष्य को मारना मानवता नहीं है। अतएव ताओ के अनुसार चलने वाला युद्ध बचाता है। जब वह शत्रुपक्ष द्वारा विवश किया जाता है, तब युद्ध करता है। उसमें भी उसे मनुष्य को मारने में आनंद नहीं आता, अपितु दुख होता है। अतएव जैसे काम बन जाता है युद्ध रोक देता है। वह बिना युद्ध के समाधान का रास्ता निकालने का अधिक प्रयास करता है।

31. युद्ध दोनों पक्षों के लिए अनिष्टकर है

1. *Weapons are instruments of bad omen:*
   all beings, I believe, loathe them.
   Therefore, whosoever has the true DAO
   does not want to know about them.

2. *The noble man, in his ordinary life,*
   considers the left the place of honour.
   In the art of warfare
   the right is the place of honour.
   Weapons are instruments of bad omen,
   not instruments for the noble.
   He uses them only when he cannot help it.
   Quietness and peace are his highest values.
   He gains victory but he does not rejoice in it.
   Whosoever would rejoice in it
   would, in fact, rejoice in the murder of men.
   Whosoever would rejoice in the murder of men
   cannot achieve his goal in the world.

3. *In fortunate circumstances one considers the left the place of honour.*
   In unfortunate circumstances one considers the right the place of honour.
   The vice-commander stands to the left,
   the supreme commander to the right.
   This means: he takes his place
   according to the rules for memorial services.
   Killing men in great numbers
   one must bewail with tears of compassion.
   Whosoever has been victorious in battle
   shall linger as if attending a memorial service.

अनुवाद

1. *शस्त्र अनिष्ट के उपकरण हैं,*
सभी प्राणी, मैं मानता हूं,
उनसे घृणा रखते हैं।
अतएव,
जो सचमुच ताओ को उपलब्ध है,
उनमें कोई रुचि नहीं लेता।

2. *सज्जन लोग अपने दैनिक जीवन में,*
बायीं ओर को सम्मानजनक मानते हैं ।
युद्धकला में दायीं ओर का सम्मान है।
शस्त्र अनिष्ट के उपकरण हैं,
सज्जन से उनका कोई प्रयोजन नहीं।
वह तो उनका विवशतावश ही प्रयोग करता है।
स्थिरता और शांति उसके लिए सर्वाधिक मूल्यवान हैं।
वह विजयी होता है किंतु उसमें आनंद नहीं मनाता।
जो इसमें आनंद मनायेगा,
वस्तुतः वह मनुष्यों की हत्या में रस लेगा।
जो मनुष्यों की हत्या में रस लेगा,
वह संसार में अपना लक्ष्य नहीं पा सकता।

3. *शुभ अवसरों पर बायीं ओर होना सम्मानजनक है।*
अशुभ क्षणों में दायीं ओर होना सम्मानजनक है।
उप सेनापति बायीं ओर स्थान ग्रहण करता है,
प्रमुख सेनापति दायीं ओर।
मानो वे श्रद्धांजलि सभा के नियम-पालन कर रहे हों।
बड़ी संख्या में लोगों को मारना,
अश्रुपूरित, करुणाविगलित होकर शोक करो।
युद्ध में विजय पाने के लिए,
शोकसभा में शामिल होने जैसा,
अविस्मरणीय क्षण है।

भावार्थ—1. हथियार अनर्थ के साधन हैं। मैं समझता हूं कि सब प्राणी उनसे घृणा करते हैं। इसलिए, जो वस्तुतः विश्व-नियम को समझता और उसका आचरण करता है, उनमें रुचि नहीं करता।

2. सज्जन अपने प्रतिदिन के जीवन में बायीं ओर को आदरणीय मानते हैं। युद्ध की निपुणता में दायीं ओर का आदर है। हथियार विनाश के साधन हैं।

सज्जन को उनकी आवश्यकता नहीं। वह मजबूर होने पर उसका इस्तेमाल करता है। उसकी दृष्टि में स्थिरता और शांति अधिक कीमती हैं। वह विजयी होता है, परंतु उसमें आनंद नहीं मानता। विजय में आनंद मानने का अर्थ है मनुष्यों की हत्या में आनंद मानना। जो मनुष्यों की हत्या में आनंद मानता है, वह इस संसार में शांति नहीं पा सकता।

3. मांगलिक समय में बायीं ओर होना आदरजनक है। अमंगल के समय दायीं ओर होना आदरसूचक है। सेनापति बायीं और उपस्थित होता है, और प्रमुख सेनापति दायीं ओर। मानो वे शोक के समय श्रद्धांजलि सभा के नियम निभा रहे हों। यदि बहुत लोग मारे गये हैं तो आंखों में आंसू भरकर शोक प्रकट करो। युद्ध में विजय क्या पाये, न भूलने वाली शोक-सभा में शामिल हुए।

भाष्य—उक्त 30 और 31 अध्याय में एक ही विषय-वस्तु है। संत लाओत्ज़े युद्ध को बुरा मानते हैं जो तथ्य है। उनका विचार है कि युद्ध में विजय पा जाने पर सच्ची विजय नहीं होती और युद्ध के बाद संधि कर लेने पर भी युद्ध आगे के लिए रुक नहीं जाता। वस्तुत: युद्ध के पहले जो उसका कारण है, उसी को जड़ से मिटाना सच्ची समझदारी है। दो शासकों में जहां मतभेद है उसी को आपस में विनम्रतापूर्वक झुककर सुलझा लेना चाहिए, तो युद्ध की आवश्यकता ही नहीं होगी। बायीं ओर होना विनम्रता, अहिंसा और प्रेम का प्रतीक है तथा दायीं ओर होना शक्ति और संघर्ष का प्रतीक है। उसी के अनुसार ग्रंथकार ने वैसा वर्णन किया है।

शासकों में शस्त्र से युद्ध के कारण और परिवार, समाज, पार्टी या किसी भी संगठन में कलह की संभावना के जो मूल में है उसी को मिटा लेना सर्वोत्तम है। सारे कलह और युद्ध के मूल में मिथ्या अहंकार, थोथी महत्त्वाकांक्षाएं और हठ होते हैं। विनम्रतापूर्वक मिल-बैठकर इसको बातचीत से सुलझाया जा सकता है। इसी में शांति है।

हिंसा का प्रेमी अपने जीवन में अपना लक्ष्य नहीं पा सकता जो परमशांति है। वैदिक युग युद्धकाल था, परंतु वहां भी युद्ध को घृणा से देखा गया है। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं, ''जहां मनुष्य अपनी ध्वजाएं लेकर संग्राम करने के लिए इकट्ठे होते हैं, जिस युद्ध में किसी का कोई हित नहीं होता, और जहां स्वर्ग के दर्शन चाहने वाले भय करते हैं, हे इंद्र और वरुण! हे ज्ञानियो! ऐसी स्थिति के लिए हमें हितकारी उपदेश दें।'' मूलवचन इस प्रकार है—

यत्रा नर: समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम्।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम्H

(ऋग्वेद, मण्डल 7, सूक्त 83, मंत्र 2)

---

32. नाम का मोह छोड़कर प्रकृति के नियम से चलें

1. *DAO as the eternal is unutterable simplicity.*

2. *Even though it is small*
   the world dares not make it its serf.
   If princes and kings could guard it in this manner
   all things would come to be their guests.
   Heaven and Earth would unite
   to shed sweet dew.
   People would find their balance
   all by themselves, without orders.

3. *When creation begins,*
   only then are there names.
   Names too reach existence,
   and one still knows where to halt.
   If one knows where to halt
   one is in no danger.

4. *The relation between DAO and world*
   may be compared
   to mountain streams and valley brooks,
   that shed themselves into rivers and seas.

अनुवाद

1. *शाश्वत ताओ की सहजता अकथनीय है।*

2. *यद्यपि यह साधारण है,*
   संसार इसे अपना दास नहीं बना सकता।
   यदि राजकुमार और सम्राट इसे इसी रूप में बचाये रखें,

तो सारा जगत उनके सामने नतमस्तक होगा।
स्वर्ग और पृथ्वी मिलकर मधु बरसायेंगे।
लोग स्वयं संतुलित रहेगे, बिना आदेश पाये।

3. *जब संसार-चक्र चला,*
तभी उसको नाम मिले।
नामों की भी एक सीमा होती है,
और उस सीमा को जानकर रुकना चाहिए।
जो जानता है उसे कहां रुकना है,
उसके लिए खतरा नहीं।

4. *ताओ और संसार के बीच संबंध वैसा ही है,*
जैसा पर्वतीय झरनों और जलधाराओं का स्वयं को,
बड़ी नदियों और समुद्र में,
गिरा देना।

भावार्थ—1. विश्वव्यापी नियम अनादि-अनंत है। उसकी सहजता-स्वाभाविकता अवर्णनीय है।

2. यद्यपि यह सर्वसामान्य है, तथापि संसार के लोग इसे अपना गुलाम नहीं बना सकते। यदि राज-पुत्र और सम्राट इसका पालन करें तो उनके सामने सारा संसार सिर झुकायेगा। सारी सत्ता मिलकर उसके लिए मधु बरसायेगी। लोग बिना शासन के संतुलित रहेंगे।

3. संसार की सृष्टि होने पर ही उसके कार्य-पदार्थों के नाना नाम कल्पित किये गये। अतएव नामों की एक हद है। अतएव उसे जानकर रुकना चाहिए। जो रुकने की सीमा जानता है उसके लिए कोई दुर्घटना नहीं है।

4. विश्व के शाश्वत नियमों और संसार के निर्मित कार्य-पदार्थों का संबंध उसी प्रकार है जिस प्रकार पर्वत के झरनों और अनेक जलधाराओं का स्वयं को नदियों और समुद्र में गिरा देना।

भाष्य—शाश्वत ताओ की सहजता अकथनीय है। ताओ है ऋत, विश्वव्यापी नियम, यूनिवर्सल इटरनल लॉ। यह सहज है, सबमें व्याप्त है। विश्वव्यापी निमयों से ही अनंत विश्व-ब्रह्मांड निरंतर गतिशील है। चांद, सितारे, सूर्य, पृथ्वी पर ऋतुएं, नदी, झरने, समुद्र, वृक्ष, वनस्पति, पर्वत, प्राणियों की देहें सब गतिमान होकर अपना-अपना काम करते हैं। निर्जीव पदार्थों के नियम, सजीव प्राणियों के नियम, सारे नियमों का समुच्चय वैदिक भाषा में ऋत कहलाता है, संत लाओत्ज़े की भाषा में ताओ कहलाता है, वैज्ञानिकों की भाषा

में यूनिवर्सल इटरनल लॉ कहलाता है और पारख सिद्धांत की भाषा में कार्य-कारण-व्यवस्था तथा विश्वव्यापी नियम कहलाता है।

यह सहज है, सरल ढंग से समस्त जड़-चेतन जगत में स्थित है और सारा संसार इसी से चल रहा है। यह इतना सहज है कि इससे पृथ्वी, चांद, सूर्य तथा असंख्य तारे गतिशील हैं, परंतु किसी से किसी का टकराव नहीं है। यह तुच्छ भौतिक शक्ति वाला मनुष्य ही अपने मिथ्या अहंकार में पड़कर जगह-जगह हाथ चमकाते हुए उलझता रहता है। यद्यपि यह सहज है, तथापि इसका वर्णन कर पाना असंभव है। विश्वव्यापी नियम को सर्वथा जान पाना और कह पाना असंभव ही है।

यद्यपि यह साधारण है, तथापि संसार इसे अपना दास नहीं बना सकता। ग्रंथकार कहते हैं, "Even though it is small." यद्यपि यह छोटा है, सूक्ष्म है, साधारण है, क्योंकि सबमें उपस्थित है; तथापि इसको कोई अपना गुलाम नहीं बना सकता। उदाहरणार्थ, आपके पेट की आंत यदि दो रोटी आराम से पचाती है, तो यही वहां का ताओ है। आप यदि चार रोटी पेट में डालकर चाहें कि आंत आराम से पचा दे, तो यह असंभव है। आपके पेट का ताओ आपकी मनमानी नहीं चलने देगा। ताओ छोटा, सूक्ष्म, अदृश्य है और सबकुछ उससे हो रहा है, परंतु उसको आप अपना गुलाम बनाकर उससे मनमाना काम नहीं ले सकते। नियम में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। यदि करेंगे तो दुख पायेंगे।

इसीलिए लोग व्यक्ति-ईश्वर की कल्पना कर रखे हैं और पूजा-प्रार्थना के बल पर उसे अपना गुलाम बनाने का मिथ्या प्रयास करते हैं। जीवन के अनुकूल घटना घटने पर उसे उसी से जोड़ लेते हैं जो कि उन्हीं के शुभकर्मों का फल होता है और जब प्रतिकूल घटना घटती है, तब जो शालीन होते हैं वे मौन हो जाते हैं और यदि अभद्र हैं तो अपने ईश्वर को गाली देते हैं। यह सब भूल-भुलैया है। वस्तुतः व्यक्ति ईश्वर कहीं नहीं है। विश्वव्यापी नियम ईश्वर है। वही ताओ है जिसे कोई अपनी मनमर्जी से नहीं चला सकता, किंतु उसे समझकर उसी के अनुसार चलने से सच्चा सुख है। हम प्रकृति के, शरीर के, मन के नियम समझें और उनके अनुसार चलें। इसी में सुख-शांति है।

यदि राजकुमार और सम्राट इसे इसी रूप में बचाये रखें, तो सारा जगत उनके सामने नतमस्तक होगा। राज्य की सारी संपत्ति प्रजा की है, यह समझकर जब शासक उसे जनता की सेवा में लगायेगा और स्वयं सादगी और विनम्रता से रहकर प्रजा की सेवा करेगा, तब प्रजा उसके सामने नतमस्तक होगी। शासक का ताओ को उसके रूप में बचाये रखने का अर्थ यही है कि जिसकी वस्तु है उसको लौटायी जाये। शासक मालिक नहीं है, अपितु प्रजा का सेवक है। वह प्रजा के धन का अपने भोग-विलास और अहंकार-पोषण में न

खर्चकर प्रजा की सेवा में लगाये, यही उसका ताओ के अनुसार चलना है।

स्वर्ग और पृथ्वी मिलकर मधु बरसायेंगे। लोग स्वयमेव संतुलित रहेंगे बिना आदेश पाये। यदि मानव-समाज ताओ का अनुगमन करे, ऋत का पालन करे, विश्व-नियमों के अनुसार आचरण करे, तो स्वर्ग और पृथ्वी मिलकर, अर्थात पूरी विश्व-सत्ता मधु बरसायेगी और बिना किसी के शासन के लोग अनुशासित रहेंगे।

यदि मनुष्य यह समझे कि दूसरों को दुख देने से दुख मिलेगा, काम-लंपट होने से मन तृष्णा में जलेगा, दूसरे का अधिकार छीनने से अपना अधिकार छिनेगा, अपने मन-इंद्रियों को विचलित करने से जीवन अशांत होगा, तो वह इन गलत रास्तों में नहीं जायेगा। ताओ को, ऋत को तथा नियम को समझना यही है।

जो मनुष्य ताओ के अनुसार चलता है उसके ऊपर पूरी सत्ता मधु बरसाती है। ऋग्वेद के ऋषि कहते हैं, "जो ऋत के पथ पर चलता है, उसके लिए वायु मधु लाता है, नदियां मधु बहाती हैं और वनस्पतियां मधु बरसाती हैं।"[1] सद्गुरु कबीर कहते हैं, "यह मन गंगा-जल की तरह निर्मल हो गया है। इसलिए अब मेरे पीछे-पीछे हरि घूमते हैं और वे बारंबार पूछते हैं कि कबीर! बताइए, मैं क्या सेवा करूं?"[2] हरि कोई व्यक्ति नहीं है। तथ्य है कि जो जीवन के नियम के अनुसार चलता है, उसका मन निर्मल हो जाता है। इसलिए उसके पीछे भगवान घूमता है। हर मनुष्य के पीछे भगवान या शैतान घूमता है। भगवान-शैतान कोई चेतन व्यक्ति नहीं हैं, अपितु मनुष्य के अपने मन के अच्छे-बुरे संस्कार हैं। वे ही उसके पीछे घूमते हैं और सुख और दुख देते हैं।

यदि मनुष्य ताओ के अनुसार चले, नैतिक नियमों के अनुसार चले, तो उसको आदेश-उपदेश देने की आवश्यकता नहीं रहेगी। वह विवेक से चलेगा। वह स्वयमेव ठीक रास्ते पर चलेगा। यह बात सच होने पर भी ताओ को, विश्वनियम को समझना सबके लिए तुरंत सरल नहीं है। जब उन्हें समर्थ गुरु मिलेंगे और वे उनके उपदेशों को समझेंगे, तो समझते-समझते समझेंगे। मनुष्य समझकर नहीं समझता है और भटक जाता है। जो कोई निरंतर दृढ़ता से लगा रहता है, वह धीरे-धीरे समझते-समझते उसमें ठहरता है।

---

1. **मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीःH**

(ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 90, मंत्र 6)

2. **यह मन तो निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।**
पीछे-पीछे हरि फिरैं, कहैं कबीर-कबीरH साखी ग्रंथH

जब संसार-चक्र चला तभी उसको नाम मिले। नामों की भी एक सीमा होती है, और सीमा को जानकर रुकना चाहिए। जो जानता है, उसे कहां रुकना है, उसके लिए खतरा नहीं है। 'जब संसार-चक्र चला— 'When creation begins.' यह एक साधारण कथन है। सृष्टि अनादि-अनंत है। द्रव्य नित्य और उसकी गति उसमें अनादि स्वत: निहित और उसकी स्वत: नित्य क्रिया से जगत-सृष्टि नित्य। अतएव आरंभ है ही नहीं। बनता-बिगड़ता हुआ संसार सदा से है और सदा रहेगा।

बात तो यह है कि संसार में पदार्थों, कार्य-वस्तुओं और भावों को नाम दिये जाते हैं। वे नाम निरे काल्पनिक होते हैं। उनके द्वारा व्यवहार में सरलता होती है। बच्चे बुझव्वल कहते हैं, **क्या है जो सबमें है और उसमें कुछ नहीं है।** तो उत्तर देते हैं, **'नाम'**। नाम प्राय: सबके रखे जाते हैं और नाम में कुछ नहीं होता है। परंतु मनुष्य नाम के मोह से पीड़ित है। अनेक पदों की कल्पना कर ली गयी और उनके नाम गढ़ लिये गये। अनेक ऐसे नाम हैं जिनके अर्थ-पदार्थ कहीं नहीं हैं, जैसे स्वर्गादि; उनको भी पाने की लालसा हो गयी। पदों के नाम हैं जिनको पाने के लिए मनुष्यों में मारामारी है। नाम व्यवहार चलाने के लिए है, परंतु वह दुख का कारण हो गया।

ग्रंथकार कहते हैं कि नामों की भी एक सीमा होती है, उसे जानकर रुकना चाहिए। नाम व्यवहार चलाने के लिए कामचलाऊ कल्पना है। बस, यही उसकी सीमा है। अतएव नाम के मोह से रुकना चाहिए। जो जानता है कि कहां रुकना चाहिए, वह खतरे में नहीं पड़ता। नाम व्यर्थ है। नाम का मोह छोड़कर अनाम स्थिति में जाना चाहिए। निर्विकल्प समाधि अनाम स्थिति है। मन के व्यापार से परे स्वस्थिति नाम-रूप से अतीत है जो प्रपंचशून्य है। उसमें स्थित होने से मनुष्य सारे खतरे से पार हो जाता है।

ताओ और संसार का संबंध वैसा ही है जैसा पर्वतों, झरनों और जलधाराओं का स्वयं को बड़ी नदियों और समुद्र में गिरा देना। जैसे जल-धाराएं नदियों तथा समुद्र में गिरती हैं वैसे संसार के सारे निर्मित कार्य-पदार्थ क्षीण होकर अपने कारण स्वरूप मूल प्रकृति में गिरते हैं, जिसका सारतत्त्व ताओ है, विश्वनियम है।

हमें कार्य-पदार्थों का, नामों का मोह है और उन्हीं के पीछे भागादौड़ी और मारामारी; परंतु वे सब क्षणभंगुर, नाशवान तथा सदा के लिए छूट जाने वाले हैं। सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं—

साधो ये मुरदों का गाँवH टेकH
पीर मरे पैगम्बर मरिहैं, मरिहैं जिंदा जोगी।
राजा मरिहैं परजा मरिहैं, मरिहैं वैद्य औ रोगीH 1H

चंदा मरिहैं सूरज मरिहैं, मरिहैं धरणि आकाशा।
चौदह भुवन के चौधरी मरिहैं, इनहूँ की क्या आशा। 2H
नौ हूँ मरिहैं दस हूँ मरिहैं, मरिहैं सहस अठासी।
तैंतीस कोटि देवता मरिहैं, पड़ी काल की फाँसी। 3H
नाम-अनाम अनंत रहत हैं, दूजा तत्त्व न होई।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, भटक मरो मत कोई। 4H

---

33. आत्मज्ञान, आत्मसंतोष अमरता का पथ है

1. *Whosoever knows others is clever.*
   Whosoever knows himself is wise.
   Whosoever conquers others has force.
   Whosoever conquers himself is strong.
   Whosoever asserts himself has will-power.
   Whosoever is self-sufficient is rich.
   Whosoever does not lose his place has duration.
   Whosoever does not perish in death lives.

अनुवाद

1. *जो दूसरों को जानता है, वह होशियार है।*
   जो स्वयं को जानता है, वह ज्ञानी है।
   जो दूसरों पर विजय पाता है, वह पहलवान है।
   जो स्वयं पर विजय पाता है, वह शक्तिवान है।
   जो अपनी बात में दृढ़ है, वह संकल्पवान है।
   जो अपने में संतुष्ट है, वह धनवान है।
   जो अपना स्थान नहीं छोड़ता, वह दीर्घ अवधि वाला है।
   जो मरकर भी नहीं मरता, वह चिरजीवी है।

भावार्थ—1. दूसरों को जानने वाला बुद्धिमान है और अपने को जाननेवाला ज्ञानी है। दूसरों पर विजय पाने वाला पहलवान कहलाता है, परंतु अपने पर विजय करने वाला बलशाली है। जो अपने सत पर अटल रहता है वह दृढ़प्रतिज्ञ है और जो आत्मसंतुष्ट है वह धनवान है। जो अपने नैतिक-नियम नहीं छोड़ता वह लंबे समय तक अपना काम करता है। जो देह छोड़कर भी जीवित है वह अमर है।

भाष्य—जो दूसरों को जानता है वह होशियार है, जो स्वयं को जानता है, वह ज्ञानी है। दूसरों को जानने का अर्थ है सामान्य ज्ञान रखना। देखकर, सुनकर, पढ़कर लोग अपनी जानकारी बढ़ाते हैं। यह दुनियादारी बुद्धिमानी है। किंतु जो स्वयं को जानता है, वह ज्ञानी है। स्वयं को जानने का तात्पर्य ही है स्वयं को सम्हाल लेना। आत्मज्ञान का अर्थ है आत्मसंयम और आत्मविश्वास।

यही सच्चे सुख का रास्ता है।

जो दूसरों पर विजय पाता है, वह पहलवान है, जो अपने पर विजय पाता है, वह शक्तिमान है। दूसरों पर विजय पाना लौकिक विजय है। चुनाव में जीत गये, मुकदमें में जीत गये, लड़ाई-भिड़ाई में जीत गये, यह सब थोथी विजय है। इन सबमें अपने अहंकार का पोषण होता है और मन दुनियादारी में अधिक चिपकता है। इससे दुख और बंधन बढ़ते हैं। किंतु जो अपने आप पर विजय कर लेता है, अर्थात अपने मन-इंद्रियों पर विजय कर लेता है, वह सच्चा बलशाली है। उसका दुख दूर हो जाता है और बंधन कट जाते हैं।

जो अपनी बात में दृढ़ है, वह संकल्पवान है। अपनी बात का अर्थ जो कुछ भी उलटा-सीधा सोच लिया गया हो, वह नहीं है। किंतु अपनी सत्य बात में, पवित्रता के रास्ते पर जो दृढ़ है, अटल है; वह संकल्पवान है, प्रतिज्ञ है। वही सच्चा मनुष्य है।

जो अपने में संतुष्ट है, वह धनवान है। लौकिक धन से कोई सच्चा धनी नहीं होता। जितना धन बढ़ता है उतनी तृष्णा बढ़ती है और उतनी मन की दरिद्रता बढ़ती है। सच्चा धनी वह है जो आत्मसंतुष्ट है। संतोष ही परम धन है। संत कबीर साहेब ने कहा है—

गो धन गज धन बाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान॥

जो अपना स्थान नहीं छोड़ता वह दीर्घ अवधि वाला होता है। अपना स्थान है, जीवन का नैतिक नियम, संयम, परहेजगारी, सादगी, सरलता, सत्यता आदि सद्‌गुण। जो इसमें स्थित रहता है वह अपने उद्देश्य का काम बहुत काल तक करता है। संयमी ही आत्मकल्याण और परसेवा ठीक से कर सकता है और दीर्घकाल तक कर सकता है।

जो मरकर भी नहीं मरता, वह चिरजीवी है। शरीर नाशवान है। इसमें रहने वाला आत्मा अमर है। जो देह की अहंता-ममता छोड़कर आत्मा में रमता है वह देह का मरना अपना मरना नहीं मानता। अतएव देहाभिमान से मुक्त हुआ साधक अमर आत्मा में स्थित होता है। वह सदैव अमर ही है। इसलिए वह मरकर भी अमर है। अर्थात शरीर छूट जाने के बाद अपने आप में स्थित है।

जेम्स लेगी लिखते हैं, "No doubt, Lao-tze believed in another life for the individual after the present."[1] अर्थात निस्संदेह लाओत्ज़े जीव का वर्तमान जीवन के बाद अन्य जीवन मानते हैं।

---

1. 33वें अध्याय की टिप्पणी।

34. सबको पोषण देने वाला निर्मान रहता है

1. *The great DAO is overflowing:*
   it can be to the left and to the right.
   All things owe their existence to it,
   and it does not refuse itself to them.
   When the work is done it does not call it its possession.
   It clothes and nourishes all things
   and does not play at being their master.
   Inasmuch as it is forever not clamouring
   one may call it small.
   Inasmuch as all things depend on it
   without knowing it as its master
   one may call it great.

2. *Thus also is the Man of Calling:*
   He never makes himself look great:
   therefore he achieves the great work.

अनुवाद

1. *महान ताओ भरपूर बह रहा है,*
   यह बायें भी है और दायें भी।
   सारी वस्तुओं का अस्तित्व इसी से है,
   और अपने सहयोग से यह उन्हें वंचित नहीं रखता।
   कार्य सिद्ध होने पर, यह उस पर अपना अधिकार नहीं जमाता।
   सभी वस्तुओं को यह वस्त्र और भोजन देता है,
   और उनका मालिक नहीं बनता।
   चूंकि यह सर्वदा संतुष्ट है,
   इसे आप छोटा मान सकते हैं।
   चूंकि सब कुछ इस पर आश्रित है,

और यह उनका अंजान मालिक है,
इसे आप महान कह सकते हैं।

2. *संत की रहनी भी इसी प्रकार होती है,*
वे महान बनने के चक्कर में नहीं पड़ते,
अतएव,
वे महान लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—1. महान ताओ दायें-बायें संपूर्ण प्रवाहित है। इसी के प्रभाव से सारी वस्तुएं अस्तित्व में आती हैं, और सब कुछ इसी से पोषित होता है। कार्य संपादित होने के बाद यह उन पर अपना आधिपत्य नहीं स्थापित करता। सभी वस्तुओं को यह खाना-कपड़ा देता है। परंतु उनका स्वामी नहीं बनता। क्योंकि यह सदैव संतुष्ट है, इसे आप सूक्ष्म मान सकते हैं। क्योंकि इसी पर सब अवलंबित है, यह उनका बिना जाने मालिक है, इसे आप महान कह सकते हैं।

2. संत की रहनी भी इसी तरह होती है। वे बड़ा बनने के चक्कर में नहीं पड़ते। इसलिए वे महान लक्ष्य को सिद्ध करते हैं।

भाष्य—ताओ विश्वव्यापी नियम है। वह सब तरफ बह रहा है। प्रकृति का नियम सब तरफ प्रवाहित है। इसी विश्व-व्यापी नियम से समस्त वस्तुएं निर्मित होती हैं, तथा पलती-पुषती हैं। वस्तुओं के संपादित हो जाने पर ताओ उन पर अपना अधिकार नहीं जमाता। वह तो मौन नियम है। वह केवल सेवा करता है, अपना अधिकार नहीं जमाता।

सभी वस्तुओं को यह भोजन और वस्त्र देता है। आप देखते हैं कि पेड़-पौधे पलते हैं। उनमें ऊपर छाल के परत बनते हैं। प्राकृतिक नियम मनुष्य तथा अन्य प्राणियों को पोषण देता है। उनके शरीर में भीतरी-बाहरी चाम निर्मित कर देता है। निरी निर्मित जड़ वस्तुओं को भी पोषण और आवरण देता है। इतने पर भी यह उनका स्वामी नहीं बनता। नियम मौन प्रवाह है। वह अपनी गति में बह रहा है।

ग्रंथकार भावनात्मक भाषा में कह रहे हैं, **यह सर्वथा संतुष्ट है।** संतोष और असंतोष चेतन प्राणी में होते हैं। ताओ तो प्रकृति का नियम है। उसमें संतोष-असंतोष की बात ही नहीं। ग्रंथकार उसकी स्वाभाविक गतिविधि को संतोष शब्द से व्यक्त करते हैं। यह छोटा, अर्थात सूक्ष्म है। किंतु ध्यान रहे, **सब कुछ इस पर आश्रित है।** संसार की सारी गतिविधियां इसी से होती हैं। इसलिए सारी सृष्टि का **यह अनजान मालिक है।** अनजान मालिक क्यों है? क्योंकि यह कोई चेतन नहीं है, अपितु अनादि स्वचालित नियम है। इसी के जोर से सारी उत्पत्ति होती है और अंततः क्षय भी। फिर भी यह नहीं जानता है कि मैं कुछ करता

हूं। क्योंकि नियम अचेतन है। अंततः **इसे आप महान कह सकते हैं।** क्योंकि विश्वनियम, ताओ, ऋत, यूनिवर्सल इटरनल लॉ से ही तो विश्व की सारी गतिविधियां चलती हैं।

संत की रहनी भी इसी प्रकार होती है। वे महान बनने के चक्कर में नहीं पड़ते। अतएव वे महान लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। ग्रंथकार प्रकृति के विश्वव्यापी नियम की गंभीरता उदाहरण रूप में रखकर संत की गंभीरता का वर्णन करते हैं कि वे बड़ा बनने के चक्कर में नहीं पड़ते। पारमार्थिक दृष्टि से कुछ बनना ही अपने को बिगाड़ना है। बनने का मतलब ही है बिगड़ना। जो बनता है वह बिगड़ता है। चेतन आत्मा शुद्ध स्वरूप शाश्वत है। वह न बनता है और न बिगड़ता है। अतएव जो व्यक्ति आत्मभाव में रहता है, वह कुछ बनना नहीं चाहता। देहोपाधि में ही लोग बड़ा बनते हैं और वह क्षणिक है। संसार की सारी बड़ाई अल्पकालिक है, किंतु आत्म-अस्तित्व शाश्वत एवं अनंत है। इसलिए संत अनात्म की चादर ओढ़कर बड़ा नहीं बनना चाहते। वे निर्विशेष शाश्वत आत्मा में ही स्थित रहते हैं। इसलिए वे अपने महान लक्ष्य शाश्वत शांति को प्राप्त होते हैं।

हम अपनी स्वाभाविक पूर्णता और ठहराव में नहीं जीते हैं, इसलिए बाहरी तथा अनात्म वस्तुओं को अपने में जोड़कर पूर्ण बनने का बालखेल करते हैं। इसका परिणाम होता है निरंतर अपूर्णता का दर्शन करना और दुखी रहना। जो महानता छूट जाती और नष्ट हो जाती है, बोधवान अपने को उसमें नहीं जोड़ता। हमारी महानता अपनी परमतृप्ति में है जो बाहर से अकिंचन लगती है। बाहर को खोये बिना कोई भीतर नहीं ठहर सकता।

35. विषय-भोग प्रेयमार्ग, ताओ श्रेयमार्ग है

1. *Whosoever holds fast to the great primal image,*
   to him the world will come.
   It comes and is not violated:
   In calmness, equity and blessedness.

2. *Music and allurement:*
   They may well make the wanderer stop in his tracks.
   DAO issues from the mouth,
   mild and without taste.
   You look for it and you see nothing special.
   You listen for it and you hear nothing special.
   You act according to it and you find no end.

अनुवाद

1. *जो उस महान मूल प्रतीक को धारण करता है,*
   लोग उसके पास आते हैं।
   वे आते हैं और बिना हानि उठाये,
   शांति, समता और पवित्रता को उपलब्ध होते हैं।

2. *मधुर संगीत और अन्य प्रलोभन,*
   यात्री को उसके मार्ग से विचलित कर सकते हैं।
   वाणी से कहा हुआ ताओ,
   फीका और स्वादरहित है।
   आप इसे देखें, और यह देखने में विशिष्ट नहीं।
   आप इसे सुनें, और यह सुनने में विशिष्ट नहीं।
   आप इसका अनुपालन करें,
   और आप पायेंगे कि इसका कोई अंत नहीं।

भावार्थ—1. जो मनुष्य उस श्रेष्ठ ताओ को अपने जीवन में धारण कर लेता है; संसार के लोग उसके पास आते हैं। उसके पास आने से किसी की

हानि नहीं होती, अपितु वे उससे शांति, समता और पवित्रता पाते हैं।

2. मोहक संगीत और दूसरे प्रलोभन सत्पथगामी को भटका सकते हैं। वाणी से ताओ का वर्णन किया जाता है, वह नीरस लगता है। ताओ पर विचार करने से वह विशिष्ट नहीं लगता। उसकी बात सुनने में भी वह विशिष्ट नहीं लगता। उसके अनुसार आचरण करने में लाभ है। ताओ अनंत है, विश्व-व्यापी नियम अनंत है।

भाष्य—जो इस महान मूल प्रतीक को धारण करता है, लोग उसके पास आते हैं। "Great primal image" महान मूल प्रतीक ताओ है। इमेज, प्रतीक, किसी तथ्य की छवि। विश्वव्यापी नियम की छवि ताओ है। सरल अर्थ है कि जो ताओ को धारण करता है, विश्वनियम को पहचान कर, जीवन के, मन के नियम समझकर उसके अनुसार चलता है, वह आत्मसंयमी हो जाता है। जो आत्मसंयमी हो जाता है, वह आत्मकेन्द्रित हो जाता है और आत्मकेंद्रित व्यक्ति आत्मसंतुष्ट, कृतार्थ एवं पूर्णकाम हो जाता है।

लोग उसके पास आते हैं। वे आते हैं और बिना हानि उठाये शांति, समता और पवित्रता को उपलब्ध होते हैं। ताओ में स्थित, जीवन-नियम-आत्मसंयम में रमने वाले पूर्णकाम मनुष्य के पास, संत के पास लोग आते हैं। क्यों आते हैं? क्योंकि संसार के सभी मनुष्य मन के उद्वेग से पीड़ित हैं। दैहिक, प्राकृतिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, दैशिक दुख तो हैं ही, मानसिक दुख सर्वोपरि है; क्योंकि अन्य सारे दुखों का भी घात-प्रतिघात मन पर ही पड़ता है। ऐसे मनुष्यों में कुछ समझदार लोग जब देखते हैं कि हमारे समान ही ये मनुष्य हैं, किंतु मन की पीड़ा से रहित सदैव संतुष्ट हैं, तो वे उनके पास इस आशा से आते हैं कि हमारा भी दुख दूर हो। फिर वे आत्मसंतुष्ट संत की संगत, सेवा तथा उनके उपदेश से आध्यात्मिक क्षेत्र में लाभान्वित होने लगते हैं। ऐसे पूर्णकाम संतों की संगत में जाने से हानि उठाने की बात ही नहीं होती, प्रत्युत पवित्रता मिलती है, शांति मिलती है और वह शांतात्मा सुख-दुख, मानापमान में समता में जीता है। जो ताओ में स्थित है ऐसे संत की संगत करने से लोगों का परम कल्याण होता है।

मधुर संगीत और अन्य प्रलोभन यात्री को उसके मार्ग से विचलित कर सकते हैं। वाणी से कहा हुआ ताओ फीका और स्वाद-रहित है। आप इसे देखें और यह देखने में विशिष्ट नहीं। आप इसे सुनें और सुनने में विशिष्ट नहीं। उक्त अनुच्छेद के कथन में प्रेयमार्ग और श्रेयमार्ग का संकेत है। इंद्रियों के विषय प्रिय लगते हैं, इसलिए विषय-मार्ग को प्रेयमार्ग कहा जाता है; और आत्मसंयम कड़वा लगता है, वह श्रेयमार्ग कहलाता है। विषय-भोगों के पथ पर चलने से पतन है और संयम के पथ पर चलने से उत्थान है।

ग्रंथकार कहते हैं कि मधुर संगीत तथा अन्य प्रलोभन की वस्तुएं यात्री को भटका सकती हैं। प्रिय लगने वाली वस्तुओं के मोह में पड़कर मनुष्य बहिर्मुख हो जाता है और बहिर्मुख होना भटकना है। बहिर्मुख होकर जीव सदैव से दुख-वन में भटक रहा है। जिससे दुख छूटे वह अंतर्मुखता की यात्रा है। वही ताओ का पथ है। परंतु ताओ का पथ फीका है। ताओ की चर्चा स्वाद-रहित है। ताओ कहने, सुनने तथा सोचने में विशिष्ट नहीं लगता है। किंतु उसके अनुसार चलने से ही मनुष्य अंतर्मुख होगा, परम शांति पायेगा। नियम ताओ है। जीवन का सच्चा नियम है जिससे दुख छूटे, वह है आत्मसंयम। संयम ताओ है। उसी का पालन कर दुख दूर होगा।

दुनिया की चमक-दमक में, फैलाव में जीना जीवन लगता है। बाहर से लौटकर भीतर सिमट आना, अंतर्मुख हो जाना मौत लगती है। यही अज्ञान की स्थिति है। दुनिया की चमक-दमक में फूला-फूला घूमने वाला बलि का बकरा है। उसे यह पता नहीं कि अभी मैं काटा जाऊंगा। सारा संयोग वियोग में बदलना है। सारी मिली हुई माया छूटनी है। स्थिर सुख मिलने में नहीं, अनमिल में है, संग में नहीं, असंग में है, पाने में नहीं, अपितु सबकुछ खोने में है। अंततः सब खो जाने वाला है। जो पहले ही मन से सब कुछ को उतार देता है वह अपने अचल आत्मा में परम विश्राम पा जाता है।

आप इसका अनुपालन करें, और आप पायेंगे कि इसका कोई अंत नहीं। ग्रंथकार कहते हैं कि आप ताओ का अनुपालन करें, ताओ के अनुसार चलें। ताओ का जीवन में अनुपालन है संयम और शील से जीवन बिताना। इसी में परम सुख है। इसके आगे तो ताओ का कहीं अंत नहीं है; क्योंकि संपूर्ण जड़-चेतन जगत के सारे स्वाभाविक नियम ताओ है। वह सबका एक व्यक्ति द्वारा पता लगा पाना असंभव है। सारा संसार ही ताओ से, विश्व-नियम से चल रहा है।

36. सारी भौतिक उन्नति पतन के गर्त में जाती है, हार मान लेने वाला विजयी है

1. *What is in the end to be shrunken,*
   Begins by being first stretched out.
   What is in the end to be weakened,
   Begins by being first made strong.
   What is in the end to be thrown down,
   Begins by being first set on high.
   What is in the end to be despoiled,
   Begins by being first richly endowed.

2. *Herein is the subtle wisdom of life :*
   The soft and weak overcomes the hard and strong.

3. *Just as the fish must not leave the deeps,*
   *So the ruler must not display his weapons.**

अनुवाद

1. *जिसको अंत में सिकुड़ना है,*
   उसका प्रारंभ फैलाव से होता है।
   जिसको अंततः बलहीन होना है,
   प्रारंभ में वह बलवान बनाया जाता है।
   जिसको अंत में नीचे डाल देना है,
   उसको पहले ऊंचे रखा जाता है।
   जिसे अंत में लुट जाना है,
   प्रारंभ में उसे धन से संपन्न किया जाता है।

2. *इस कथन में जीवन का गहन मर्म छिपा है,*
   कोमल और निर्बल विजय पाते हैं,
   कठोर और बलवान पर।

---

* **John Wu का पाठ।**

3. जिस प्रकार मछली गहरे पानी को न छोड़े,
उसी प्रकार शासक भी अपनी भावी योजनाओं को प्रकट न करे।

भावार्थ—1. फैलने वाला सिकुड़ता है, बलवान निर्बल होता है। ऊंची जगह पर रहनेवाला नीचे आता है। धन-संपन्न व्यक्ति अंत में लुट जाता है।

2. इस बात में जिंदगी का गहरा रहस्य छिपा है कि अहंकारी और शक्तिशाली पर विनम्र और बलहीन विजय पाते हैं।

3. मछली पानी के अपने गहरे निवास को न छोड़े, वैसे शासक अपनी भावी योजनाओं को पहले प्रकट न करे।

भाष्य—जिसको अंत में सिकुड़ना है, उसका प्रारम्भ फैलाव से होता है। दीपक में जब तेल समाप्ति पर होता है, तब वह जोर से जल उठता है और फिर बुझ जाता है। जो बहुत तेजी से विकास करता है वह बहुत जल्दी ह्रास की तरफ लौटता है।

वस्तुत: सारा फैलाव सिकुड़ता है। संसार का स्वभाव यही है। जन्म मृत्यु के लिए होता है। संयोग वियोग के लिए होता है। अनुकूलता प्रतिकूलता के लिए होती है। जन्म, संयोग और अनुकूलता में सुख मानने का अर्थ है मृत्यु, वियोग और प्रतिकूलता में बिलबिलाना।

सारा फैलाव सिकुड़ता है। जब जोर से फैलाव होगा तब जोर से सिकुड़ना भी होगा। इसलिए विवेकवान बहुत फैलाव में नहीं पड़ते। वे सहज जीवन जीते हैं। वे फैलाने की इच्छा नहीं रखते। सहज पुरुषार्थ तथा प्रारब्धाधीन जो फैलता है, उसके सिकुड़ने में भी उनकी स्थिति सहज ही रहती है। इसलिए उनकी दृष्टि में फैलना और सिकुड़ना ताओ की, विश्व-नियम की प्रक्रिया मात्र लगती है। उसमें उन्हें हर्ष-शोक नहीं होते।

जिसको अंतत: बलहीन होना है, प्रारंभ में वह बलवान बनाया जाता है। रावण, कुंभकर्ण, मेघनाद, दुर्योधन महा बलवान थे, परंतु अंत में क्या हुआ? महा बलवान रावण पर विजेता श्रीराम कथानुसार अपने पुत्रों—लवकुश से परास्त हुए। महा बलवान अर्जुन द्वारका-हस्तिनापुर के रास्ते में वनवासियों द्वारा लूटे गये। महा बलवान श्रीकृष्ण अपने परिवार यादव-वंश द्वारा द्वारका में परास्त हुए और उनकी दृष्टि के सामने यादव वंश का नाश हुआ। महा बलवान ब्रिटिश शासन का पूरी दुनिया में फैलाव था, वह दशकों पूर्व सिकुड़कर प्राय: इंग्लैंड में रह गया। एलैक्जेंडर, चंगेज खां, तुर्कवंश, गुलामवंश, मुगलवंश, हिटलर के शासन कहां गये! महात्मा गांधी जैसी महाशक्ति भारत स्वतंत्र होने पर अपने अनुगामियों द्वारा उपेक्षित हुई और एक हिंदू द्वारा मारी गयी। परिवार और समाज का मुखिया बुढ़ापा में एक किनारे बैठ जाता है। संसार ही ऐसा है

कि बल को निर्बल होना पक्का है। अतएव अपने बल का प्रयोग पर-सेवा में करे और निर्मान रहे।

जिसको अंत में नीचे डाल देना है, उसको पहले ऊंचा रखा जाता है। दूल्हा के लिए तो यह कहावत ही है कि वह अभागा घोड़े पर बैठता है और अब आगे जीवनपर्यंत उसे घोड़े की तरह मुंह लटकाये चिंतित रहना पड़ेगा। मैं ट्रेन में चल रहा था। साइड की दोनों शायिकाओं पर दो युवक लेटे थे। ऊपर वाला युवक किसी बात को लेकर हंसा। नीचे के युवक ने कहा, ''हंस ले आज, कल से तेरे को रोना है।'' मैंने कहा, ''क्यों भैया, इसको ऐसा क्यों कहते हो?'' उसने कहा, ''महाराज, यह दूल्हा है, कल इसका विवाह होना है, फिर तो इसे जीवनपर्यंत रोना ही है।'' कितने राष्ट्रपति, मंत्री और प्रधानमंत्री अपने एकांत कमरे में पड़े तन्हाई का अवसाद भोग रहे हैं। ऊंचा चढ़ा ही जाता है नीचे उतरने के लिए; यदि इसका ख्याल रखा जाये तो कोई दुख नहीं है। मनुष्य ऊंचा चढ़कर उसमें चिपके रहना चाहता है जो संभव नहीं है।

जिसे अंत में लुट जाना है, प्रारंभ में उसे धन से संपन्न किया जाता है। अंतत: सभी धनवान को लुट जाना है। कबीर साहेब की भाषा में कहें तो, ''छोड़ि-छोड़ि सब जात हैं, देह गेह धन राज।'' धीरूभाई अंबानी ने मोबाइल का बड़ा प्रचार किया, किंतु मरते समय एक मोबाइल न ले जा सका। ''तन पिंजरा न अइहैं काम, पंछी उड़ि जइहैं।'' यहां किसी का क्या रह जाता है। किसी का कुछ है ही नहीं। सब कुछ एक दिखावा है, एक धोखा है, वस्तुत: व्यवहार है, जो अत्यंत क्षणिक है।

इस कथन में जीवन का गहन मर्म छिपा है, कोमल और निर्बल, विजय पाते हैं कठोर और बलवान पर। जो कोमल है, विनम्र है, जिसने जानबूझकर सबसे हार मान ली है, उसको कौन हरा सकता है? जो पहले ही हारकर खड़ा है, उसे हरा पाना असंभव है। आंधी बड़े पेड़ों को गिराती है, जमीन में चिपकी हुई घास को नहीं। सबसे हार मान लेने वाला सब पर विजयी हो जाता है। इसी में जीवन का रहस्य छिपा है। असली जीवन वह है, जिसमें स्थिर शांति हो, यह संसार से हार मान लेने में है। यह कायरता नहीं है। ऐसा वही कर सकता है जो भीतर से महा बलवान हो गया है। आत्मविजयी ही सबसे हार मानकर चलने वाला होता है। संसार से हार मान लेने वाला इसी जीवन में सबसे मुक्त होकर शाश्वत शांति पाता है और शाश्वत आत्मा में सदा के लिए शांत हो जाता है। प्रतिक्रिया-विहीन शांतात्मा सबसे हार मान लेता है। कबीर साहेब कहते हैं—

समुझि बूझि जड़ हो रहे, बल तजि निर्बल होय।
कहहिं कबीर ता संत का, पला न पकरै कोयH

(बीजक, साखी 167)

जिस प्रकार मछली गहरे पानी को न छोड़े, उसी प्रकार शासक भी भावी योजनाओं को प्रकट न करे। मछली का इसी में हित है कि वह गहरे पानी में रहे, इसी प्रकार राजा अपनी भावी योजना को गुप्त रखकर काम करे। यह बात केवल राजकाज के लिए ही नहीं है, अपितु हर क्षेत्र के लिए है। अपनी हर कार्य-योजना की घोषणा करते फिरना ओछापन है। आप गंभीरता से अपना काम करें, परिणाम आने पर लोग जानेंगे ही। लोगों को जनाने की आवश्यकता ही नहीं है, काम होना चाहिए, सेवा होना चाहिए।

साधक को तो अत्यंत गंभीर होना चाहिए। ब्रह्मचर्य और वैराग्य साधने की वस्तुएं हैं, घोषणा की नहीं। एक गृहस्थ पति-पत्नी ने घोषणा की कि हम अब ब्रह्मचर्य से रहेंगे। उन्हें कहा गया कि मौन होकर इसे साधो, कहो मत। उन्होंने कहा, ''नहीं साहब! सबको बताना है। यह हमारा पक्का विचार है।'' दो वर्ष के बाद उनको एक बच्चा पैदा हुआ। वे लज्जित थे। एक बाइस वर्ष के सुंदर शिक्षित जवान अध्यापक ने कहा, ''मैं तीन वर्ष में विरक्त हो जाऊंगा।'' उसने तीन वर्ष बीतने पर विवाह कर लिया। वह लज्जित हुआ। बताने और दिखाने की चेष्टा छिछलापन है, काम करना चाहिए।

37. सहजता और निष्कामता उत्तम जीवन के लक्षण हैं

1. *DAO is eternal without doing,*
   and yet nothing remains not done.

2. *If princes and kings know how to guard it*
   all things will take shape by themselves.
   If they take shape by themselves and desires arise
   I should banish them with unutterable simplicity.
   Unutterable simplicity works departure of desire.
   Being without desire makes still,
   and the world rights itself.

अनुवाद

1. *ताओ शाश्वत है, बिना कुछ किये,*
   फिर भी कुछ अनकिया नहीं रह जाता है।

2. *यदि अधिकारी और शासक इसको जानकर*
   सुरक्षित रख सकें,
   तो सभी कुछ व्यवस्थित हो जायेगा, स्वयमेव।
   चीजों के स्वाभाविक व्यवस्थित हो जाने पर,
   जब इच्छाएं बढ़ती हैं,
   तो मैं उन्हें बड़ी सहजता से हटा दूंगा।
   अकथनीय सहजता से चाहना-रहित हुआ जाता है।
   चाहना-रहित व्यक्ति निश्चल होता है,
   और तब संसार स्वयमेव संतुलित हो जाता है।

भावार्थ—1. विश्वनियम अनादि-अनंत है। उसमें करने का कुछ अहंकार नहीं है, परंतु संसार की सारी क्रियाएं उसी से होती हैं।

2. यदि शासक और अधिकारी इस तथ्य को समझें और इससे अपने जीवन में प्रेरणा लें, तो सबकुछ स्वत: ठीक हो जायेगा। सुंदर व्यवस्था से जब

वस्तुएं स्वाभाविक व्यवस्थित हो जाती हैं, तब उनके लिए अधिक इच्छाएं बढ़ सकती हैं, परंतु उन्हें सहज ढंग से मिटाया जा सकता है। पूर्ण सहज अवस्था में रहने से इच्छाएं मिटायी जा सकती हैं। इच्छा-रहित मनुष्य प्रशांत होता है। इसके बाद उसके आस-पास स्वाभाविक संतुलन आता है।

भाष्य—ताओ शाश्वत है, बिना कुछ किये; फिर भी कुछ अनकिया नहीं रह जाता। विश्व-व्यापी नियम शाश्वत है, नित्य एवं अनादि-अनंत है। उसे कुछ पता नहीं है कि मैं कुछ करता हूं, इसलिए वह बिना कुछ किये नित्य है। परंतु उसके द्वारा किये बिना कुछ नहीं रह जाता। संसार की सारी क्रियाएं उसी के द्वारा ही तो होती हैं। फिर भी वह कुछ नहीं करता, क्योंकि उसमें कर्तापन का अभिमान नहीं है। अभिमान ज्ञाता में होता है, चेतन में होता है। विश्व-नियम अचेतन है, जड़ है, अतएव उसमें कर्तापन का अहंकार होना असंभव है।

असंख्य तारे, चांद, सूरज, पृथ्वी निरंतर गतिशील हैं। पृथ्वी पर समुद्र लहरा रहा है। झरने तथा नदियां अबाध गति से प्रवाहित हैं। वृक्ष-वनस्पति, पर्वत सब में विकास-ह्रास है। सारा ब्रह्मांड गतिशील है, क्रियावान है, किंतु उसे कुछ पता नहीं है कि मैं कुछ कर रहा हूं। ताओ से सब कुछ हो रहा है, लेकिन ताओ कर्तापन के अहंकार से रहित है। विश्व-नियम से विश्व निरंतर चल रहा है, किंतु विश्व-नियम विनम्र है, अहंकार-शून्य है, कर्ताभाव-शून्य है।

ग्रंथकार का उपर्युक्त कथन उपलक्षण मात्र है। विश्व-नियम अचेतन है, तो उसमें कर्ताभाव होना या कोई भावना होना असंभव ही है। संत लाओत्ज़े कहते हैं कि हे मनुष्यो! तुम्हारे कर्म तो अत्यंत अल्प हैं, क्षणिक हैं, और तुम उसके कर्तापन के अहंकार की आग में जलते हो। देखो, विश्व-व्यापी नियम जिसे हम ताओ कहते हैं, उसके द्वारा, उसकी क्रिया से अनंत ब्रह्मांड तथा उसके कार्य-पदार्थ सब गतिशील हैं, किंतु उसे कोई अहंकार नहीं। अतएव तुम कर्तापन के अहंकार से शून्य हो जाओ। ताओ इसीलिए शाश्वत है, क्योंकि वह कर्तापन के अहंकार से सर्वथा रहित है। तुम भी कर्तापन का अहंकार छोड़ दो, तो शाश्वत हो जाओगे, शाश्वत आत्मा में स्थित हो जाओगे।

यदि शासक और अधिकारी इसको जानकर सुरक्षित रख सकें, तो सभी कुछ व्यवस्थित हो जायेगा, स्वयमेव। यदि राजा, मंत्री और अफसर इस तथ्य को समझें कि कर्तापन के अहंकार को त्यागकर निष्काम-भाव से प्रजा की सेवा करना चाहिए और ऐसा वे करें, तो सब कुछ स्वत: ठीक हो जायेगा। आज-कल न प्रिंस हैं न किंग हैं, न राजकुमार हैं न राजा। आजकल मंत्री हैं। मंत्रियों के भ्रष्ट होने से, अफसर भ्रष्ट होते हैं, फिर कर्मचारी समुदाय भ्रष्ट होता है। इससे प्रजा पीड़ित होती है। यदि मंत्री सादगी से रहें और अहंकार छोड़कर जनता की सेवा करें, तो अफसर, क्लर्क सब व्यवस्थित हो जायें। केवल कानून

लाद-लादकर देश सुखी नहीं होगा, अपितु पहले बड़े पदों पर रहने वाले जब सादे, सरल, निष्काम, निर्मान होकर सेवा-परायण होंगे, तब प्रजा व्यवस्थित होगी और सब सुखी होंगे।

चीजों के स्वाभाविक व्यवस्थित हो जाने पर जब इच्छाएं बढ़ती हैं, तो मैं उन्हें बड़ी सहजता से हटा दूंगा। मनुष्य के अपने पुरुषार्थ और प्रारब्ध होते हैं। उनके बल से उसके जीवन में धीरे-धीरे स्वाभाविक सांसारिक वस्तुओं का संग्रह होने लगता है और बहुत बड़ा संग्रह हो जाता है। जब धन-दौलत और भोग-सामग्री अधिक बढ़ती है तब मनुष्य के मन में उन जैसे अन्य भोगों को पाने तथा अधिकाधिक पाने की इच्छा उत्पन्न होती है। ग्रंथकार कहते हैं कि कर्तापन और भोक्तापन का अहंकार यदि नहीं है, तो हम मन में उत्पन्न इच्छाओं को, तृष्णाओं को सहज ही हटा देंगे।

अभिप्राय यह है कि जब तक जीवन है, तब तक मन में नयी इच्छाएं उठ सकती हैं। बहुत ऐश्वर्य होने पर भी ऐश्वर्य की नयी कल्पनाएं कर उनको पाने की लालसा उठ सकती है। ग्रंथकार कहते हैं कि यदि विवेक रखते हैं, कर्तापन-भोक्तापन का अहंकार त्यागते हैं, तो नयी उठी हुई इच्छाओं को बड़ी सहजता से हटा देंगे। साधना में रहने का अर्थ ही यही है कि सांसारिक इच्छाएं मन में उत्पन्न ही न हों, और यदि कदाचित कहीं किसी प्रकार की इच्छा उठे, तो उसे तुरंत त्याग दे। अशुभ इच्छा तो उसको उठेगी ही नहीं, शुभ इच्छा भी यदि परीक्षा न रखें तो भटकाने वाली है।

अकथनीय सहजता से चाहना-रहित हुआ जाता है। अकथनीय का अर्थ होता है जो कहने में न आये। इसका लाक्षणिक अर्थ है सर्वोच्च-सहजता का अर्थ है सरल भाव से रहने की स्थिति। जो मनुष्य सब तरफ से निर्मान और निष्काम है और शरीर-निर्वाह की आवश्यक वस्तुएं सादा और मध्यवर्ती ढंग से लेता है और सब समय अपने सहज स्वरूप आत्मा में संतुष्ट रहता है; और जीवन में मिले हुए अनुकूल-प्रतिकूल से प्रतिक्रिया-रहित होकर समता में बरतता है, उसकी यह स्थिति, यह रहनी अकथनीय सहजता की है। ऐसी उच्च स्थिति में ही चाहना-रहित होकर रहा जा सकता है। जो संसार का ऐश्वर्य नहीं चाहता, मान-सम्मान एवं पद नहीं चाहता, और निर्वाह में भी सादा एवं स्वल्प में संतुष्ट है तथा सभी स्थितियों में समता प्राप्त है, वही इच्छा-रहित होकर रह सकता है।

चाहना-रहित व्यक्ति निश्चल होता है, और तब संसार स्वयमेव संतुलित हो जाता है। जो मनुष्य अपने मन की इच्छाओं को जीत लेता है, वह निर्द्वंद्व होता है, प्रशांत होता है। अतएव वह निश्चल होता है। वह किसी भी अनुकूल-प्रतिकूल स्थिति में चलायमान नहीं होता। चाहे जितना लौकिक लाभ हो और

चाहे जितनी हानि हो; सम्मान मिले, अपमान मिले, शारीरिक कष्ट हो और चाहे जैसा जितना द्वंद्व हो, इच्छाजित मनुष्य कभी विचलित नहीं होता। पवित्र रहनी का परिचय ही है, मन की निश्चलता।

ऐसे धीरचेता पुरुष का संसार स्वयमेव संतुलित हो जाता है। हर व्यक्ति का अपना संसार है। उसके आसपास फैला प्राणियों का जगत स्वयमेव ठीक हो जाता है। जब हम स्वयं ठीक हैं, तो सब ठीक है। दूसरों को ठीक करने का हमारा अधिकार नहीं है। हम स्वयं ठीक हैं बस सब ठीक है।

38. श्रेष्ठ और निम्न आचरण की पहचान

1. *Whosoever cherishes Life*
   does not know about Life
   therefore he has Life.
   Whosoever does not cherish Life
   seeks not to lose Life:
   therefore he has no Life.

2. *Whosoever cherishes Life*
   does not act and has no designs.
   Whosoever does not cherish Life
   acts and has designs.

3. *Whosoever cherishes love acts but has no designs.*
   Whosoever cherishes justice acts and has designs.

4. *Whosoever cherishes morality acts*
   and if someone does not respond to him
   he waves his arms about and pulls him up.

5. *Therefore: If DAO is lost, then Life.*
   If love is lost, then justice.
   If justice is lost, then morality.

6. *Morality is the penury of faith and trust*
   and the beginning of confusion.
   Foreknowledge is the sham of DAO
   and the beginning of folly.

7. *Therefore the right man abides with fullness*
   and not with penury.
   He lives in being, not in sham.
   He puts the other away and adheres to this.

अनुवाद

1. *जो उच्च जीवन के मूल्य को समझता है,*
   उसे जीवन के बारे में कुछ पता नहीं,
   अतएव, वह उसमें जीता है।
   जो उच्च जीवन के मूल्य को समझता नहीं,
   वह जीवन को खोने में उत्सुक नहीं,
   अतएव, वह उसमें जीता नहीं।

2. *जो उच्च जीवन के मूल्य को समझता है,*
   वह कर्म करता नहीं, और उसको स्वार्थ नहीं।
   जो उच्च जीवन के मूल्य से अपरिचित है,
   वह कर्म करता है, और उसको स्वार्थ है।

3. *जो उच्च प्रेम का मूल्य जानता है,*
   वह कर्म करता है किंतु स्वार्थ नहीं रखता।
   जो उच्च न्याय को मूल्यवान मानता है,
   वह कर्म करता है, और उसको स्वार्थ है।

4. *जो नैतिकता की परवाह करता है,*
   वह कर्म करता है,
   और जब लोग उसके अनुकूल नहीं करते,
   तब वह अपनी बाहें लहराता है,
   और उन्हें धमकाता है।

5. *अतएव, जब ताओ का लोप होता है, तब जीवन का भी।*
   जब प्रेम का लोप होता है, तब न्याय का भी।
   जब न्याय का लोप होता है, तब नैतिक सिद्धांत का भी।

6. *नैतिक सिद्धांत निष्ठा और विश्वास की दरिद्रता मात्र है,*
   और यही अव्यवस्था का प्रारंभ है।
   भावी ज्ञान ताओ के नाम पर पाखंड है,
   और यही मूढ़ता का प्रारंभ है।

7. *अतएव, संत समग्रता में वास करते हैं,*
   दरिद्रता में नहीं।
   वे प्रामाणिकता में जीते हैं, पाखंड में नहीं।
   वे अन्य का निषेध करते हैं, एवं इसका समर्थन।

भावार्थ—1. जो मनुष्य अपने जीवन की श्रेष्ठता समझता है वह उसकी स्वाभाविकता में जीता है; इसलिए उसे जीवन के विषय में कुछ पता नहीं रहता।

जो अपने जीवन की श्रेष्ठता नहीं समझता, वह उसकी स्वाभाविकता में नहीं जीता है। इसलिए वह जीवन को खोने में उत्साहित नहीं।

2. जो मनुष्य अपने श्रेष्ठ जीवन के मूल्य को समझता है वह निष्कर्म और निस्स्वार्थ होता है। जो श्रेष्ठ जीवन के मूल्य को नहीं समझता वह कर्म करता है और उसका अपना स्वार्थ होता है।

3. जो उच्च प्रेम की कीमत समझता है, वह कर्म तो करता है किंतु स्वार्थ नहीं रखता। जो उच्च न्याय की कीमत समझता है, वह कर्म करता है और उसके अपने स्वार्थ होते हैं।

4. जो नैतिकता की चिंता रखता है, वह कर्म करता है और जब अन्य लोग उसके अनुसार नहीं करते, तब वह अपने हाथ उठाकर उन्हें धमकी देता है।

5. इसलिए जब ताओ खो जाता है, तब जीवन भी खो जाता है। जब प्रेम खो जाता है तब न्याय भी खो जाता है। जब न्याय खो जाता है तब नैतिक सिद्धांत भी खो जाता है।

6. नैतिक सिद्धांत श्रद्धा और विश्वास का अभाव है। यहीं से जीवन में अव्यवस्था होती है। भविष्य ज्ञान ताओ के साथ वंचना है। यही मूर्खता का प्रारंभ है।

7. इसलिए संत पूर्णता में जीते हैं, दरिद्रता में नहीं। वे सच्चाई में जीते हैं, ढोंग में नहीं। वे एक को छोड़कर इसे ग्रहण करते हैं।

भाष्य—जो उच्च जीवन के मूल्य को समझता है, उसे जीवन के बारे में कुछ पता नहीं, अतएव वह उसमें जीता है। पूर्ण निष्कामता और पूर्ण निर्मानता उच्च जीवन का तत्त्व है। जो मनुष्य इस तथ्य को समझता है, वह इस दशा में जीता है। जब उसकी यह रहनी स्वाभाविक हो जाती है, तब उसके ये सद्गुण सामान्य हो जाते हैं; अतएव उसे यह नहीं लगता कि मैं कुछ बड़ा काम कर रहा हूं। यह तो उसका स्वभाव हो जाता है। कहा जाता है कि हनुमान जी को अपने बल की याद नहीं रहती थी। बल उनका स्वभाव हो गया था। निर्मोहता बड़ी बड़ाई की बात है, परंतु जो सब तरफ से पूर्ण निर्मोह है, उसको अपनी निर्मोहता का कोई महत्त्व नहीं प्रतीत होता। वह समझता है कि मोह मवाद है, नरक है, पीड़ा है, अतएव उससे बचे रहना है। यदि उससे न बचूंगा तो मैं स्वयं दुखी हो जाऊंगा। इस प्रकार उसके जीवन में निर्मोहता स्वभावसिद्ध हो जाती है। उसे यह लगता ही नहीं है कि मैं निर्मोह हूं। अतएव यह सच्चाई है कि जो उच्च जीवन के मूल्य को समझता है, उसे जीवन के बारे में कुछ पता नहीं रहता।

याद रहे उपर्युक्त कथन का भाव एक मर्यादा तक है। उच्च जीवन जीने वाला कोई बदहोशी में नहीं जीता है कि उसे अपने सद्‌गुणों की याद न हो। वस्तुत: उसके जीवन के सद्‌गुण स्वभावसिद्ध हो जाने से उनका उसे अहंकार नहीं रहता। जो उच्च जीवन के मूल्य को समझता है और उसमें जीता है, उसे अपने जीवन का पूर्ण पता रहता है कि मैं सही ढंग से जी रहा हूं, किंतु उसे उसका अहंकार नहीं रहता। यही भाव लेकर ग्रंथकार कहते हैं, **उसे जीवन के बारे में कुछ पता नहीं।**

जो उच्च जीवन के मूल्य को समझता नहीं, वह जीवन को खोने में उत्सुक नहीं, अतएव वह उसमें जीता नहीं है। यह शरीर कल्याण-साधन है, इसलिए मूल्यवान है; इस तथ्य को जो नहीं समझता है, वह साधना में नहीं जीता है, इसलिए वह इसका मोह त्याग नहीं पाता। जीवन का मूल्य वह समझता है जो जीवन को खोने के लिए तैयार है; और जो जीवन को बचाने में लगा है, वह जीवन को नहीं समझता; अतएव वह जीवन को ठीक ढंग से नहीं जीता है।

यहां जीवन को खोने का अर्थ है सारे राग-रंग को छोड़कर अंतर्मुखता की यात्रा में जीना। लोगों ने भोग-विलास और राग-रंग को जीवन मान रखा है, इसलिए भोग-राग छोड़ना जीवन को खोना लगता है और जो यह नहीं कर सकता, वह जीवन के मूल्य को नहीं समझता। जीवन को उसने समझा जो जीवन को खोने के लिए पूर्ण तैयार है। जीवन का मोह सर्वथा छोड़ देना जीवन को समझना है। सद्‌गुरु कबीर ने कहा है—''तब जानिया जब जीवत मुआ।'' अर्थात जीवन को तब जाना जब जीतेजी मर गया। शरीर को धूल में मिलना ही है। राजा-प्रजा, धनी-निर्धन, विद्वान-अविद्वान, विरक्त-गृहस्थ कोई भी देह त्यागने से बचने वाला नहीं है। सबको देह छोड़ना है। वह धन्य है जिसने मन से इसे छोड़ दिया। जीवन का मूल्य उसने चुकाया जिसने जीवन का मोह छोड़ दिया।

जो उच्च जीवन के मूल्य को समझता है, वह कर्म करता नहीं, और उसको स्वार्थ नहीं। उच्च जीवन है निष्काम और निर्मान हो जाना। जो निष्काम और निर्मान है, वह कर्म नहीं करता, क्योंकि उसे कोई स्वार्थ नहीं। वस्तुत: ऐसे निष्काम और निर्मान मनुष्य से बहुत बड़े कर्म होते हैं जो लोक के लिए कल्याणदायी होते हैं, परंतु उसे उन कर्मों के मूल में कोई अहंकार नहीं होता। कबीर साहेब की भाषा में कहें तो ''कर्म करे औ रहे अकर्मी।'' वह कर्म करते हुए भी अकर्मी रहता है। स्वार्थ-त्यागी, निष्कामी और निर्मानी मनुष्य कर्म तो करता है, परंतु उसे यह नहीं लगता कि मैं कुछ करता हूं। इसलिए मानो वह कर्म नहीं करता है। उससे बुरे कर्म होते नहीं। अच्छे कर्म होते हैं परंतु वे

उसके जीवन के सहज अंग बन जाते हैं। इसलिए वह कर्म करते हुए अकर्मी रहता है।

जो उच्च जीवन के मूल्य से अपरिचित है, वह कर्म करता है और उसको स्वार्थ है। अहंकार-कामना-शून्यता जीवन की उच्चता है। इस तथ्य से जो अनभिज्ञ है वह लोक-परलोक के भोग पाने के लिए कर्म करता है, क्योंकि उसको भोगों का स्वार्थ है। मनुष्य को कर्म करना चाहिए; क्योंकि जीवन-निर्वाह कर्म से ही हो सकता है। शुद्ध निर्वाह शुद्ध स्वार्थ है। यह ठीक है। दूसरे के अधिकार को मारकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना घृणित है। अपनी आध्यात्मिक उन्नति छोड़कर ऐश्वर्य पाने के लिए कर्म में डूबे रहना अपने को धोखा देना है। यह अपने जीवन के उच्च मूल्य को नहीं समझना है।

जो उच्च प्रेम का मूल्य जानता है, वह कर्म करता है, किंतु स्वार्थ नहीं रखता। उच्च प्रेम है, प्रिय की सेवा कर देना और उससे कुछ न चाहना। किसी एक व्यक्ति में प्रेम, प्रेम की एक मर्यादा है, सीमा है। वस्तुत: प्रेम वह है जो सबके लिए हो। जिसका हृदय प्रेममय है वह सबको प्रेम देता है। सूर्य प्रकाश स्वरूप है। वह सबको प्रकाश देता है। प्रकाश के अलावा उसके पास कुछ है ही नहीं। आग अपनी गरमी अपने चारों ओर फैलाती है, जल अपनी शीतलता फैलाता है। इसी प्रकार प्रेमपूर्ण व्यक्ति सर्वत्र अपना प्रेम फैलाता है। वह लोक के हित में प्रेम रखकर कर्म करता है और उसके परिणाम में अपने लिए कुछ नहीं चाहता।

जो उच्च न्याय को मूल्यवान मानता है, वह कर्म करता है और उसके स्वार्थ हैं। राजाओं-सम्राटों के उच्च कहे जाने वाले ऐसे-ऐसे न्याय थे जिनमें वर्ग-शोषण था। भारत में स्मृतियों के ऐसे कानून थे कि जिस अपराध से शूद्र कहे जाने वाले लोगों को मृत्युदंड मिलता था, उस अपराध के करने पर ब्राह्मण कहे जाने वाले लोग दंड से साफ बरी कर दिये जाते थे। यज्ञ करने वाले ब्राह्मण को यदि धन की आवश्यकता पड़े और पास में शूद्र के घर में धन है तो वह बिना उससे पूछे उसके घर से धन ला सकता था, क्योंकि सब धन ब्राह्मण का ही है। ब्राह्मण किसी की गाय के पास खड़ा हो जाये तो वह गाय ब्राह्मण की है। सुकरात को न्याय द्वारा ही विष दिया गया था। कुछ मुसलिम राजा गैर मुसलमानों पर जज़िया कर लगाते थे। संत ईसा को न्याय द्वारा ही मृत्युदंड दिया गया था। न्याय द्वारा ही मंसूर और सरमद को मृत्युदंड दिया गया, क्योंकि उन्होंने 'अनलहक़' कहा था। जिसका अर्थ होता है 'मैं सच'। इसाइयों ने ईसा को ईश्वर-पुत्र न मानने वालों को रोम में न्याय के आधार पर ही क्रूरतापूर्वक मृत्युदंड दिया। सैकड़ों की संख्या में लकड़ी के कोल्हू में पेरकर मार दिये जाते थे जो ईसा को ईश्वर-पुत्र नहीं मानते थे। ऐसे सब न्याय घृणित स्वार्थ से भरे

हैं। अमुक वर्ग के लोग जन्म से नीच या ऊंच होते हैं, यह न्याय क्रूर और घृणित ही है।

जो नैतिकता की परवाह करता है, वह कर्म करता है, और जब लोग उसके अनुकूल नहीं करते, तब वह अपनी बाहें लहराता है, और उन्हें धमकी देता है। यहां नैतिकता का अर्थ है, कर्मकांड। नाना संप्रदायों के अपने कर्मकांड हैं और वे उन्हें नैतिकता मान रखे हैं। इसलिए जो उनकी तथाकथित नैतिकता को नहीं मानता, वे उसके विरोध में खड़े हो जाते हैं और उन्हें धमकी देते हैं कि तुम्हारा नरक होगा, क्योंकि तुम नास्तिक, काफिर, म्लेक्ष और अपवित्र हो।

अतएव जब ताओ का लोप होता है, तब जीवन का भी। जब प्रेम का लोप होता है तब न्याय का भी। जब न्याय का लोप होता है तब नैतिक सिद्धांत का भी। ग्रंथकार कहते हैं, कि जब विश्वनियम तथा जीवन-नियम का तिरस्कार होता है, तब जीवन का सच्चा रूप (निष्कामता और निर्मानता) नष्ट हो जाता है। जब सच्चा प्रेम, विश्वव्यापी प्रेम का लोप होता है तब सच्चा न्याय भी नष्ट हो जाता है। जब सच्चा न्याय नष्ट हुआ तब सच्चा नैतिक सिद्धांत भी नष्ट होता है। सब अच्छाई के मूल में है प्रकृति, शरीर, मन आदि के अनादि मौलिक नियमों को जानना और उनका यथायोग्य पालन करना। अच्छे जीवन का नियम है पूर्ण निष्काम और निर्मान रहना। इसी से शुद्ध प्रेम, शुद्ध न्याय तथा शुद्ध नैतिकता का विकास होगा।

नैतिक सिद्धांत निष्ठा और विश्वास की दरिद्रता मात्र है और यही अव्यवस्था का प्रारम्भ है। जो नाना संप्रदायों द्वारा नीति के सिद्धांत गढ़कर चलाये जाते हैं, जिनमें कर्मकांड की ही अधिकता रहती है, उसके मूल में है आत्मनिष्ठा और आत्मविश्वास का अभाव। अमुक प्रकार पूजा, अमुक तीर्थ, अमुक नदी, अमुक मंत्र, अमुक नाम, अमुक यज्ञ, अमुक प्रार्थना सारे पापों को काटने वाले, सब प्रकार भोग और मोक्ष देने वाले हैं तथा निरीह-निरपराध प्राणियों की हत्या करने से ईश्वर तथा देवता प्रसन्न होते हैं; यह सब ऐसे नियम हैं, ऐसे नैतिक सिद्धांत हैं जो मनुष्य को केवल मूढ़ बनाते हैं। इन सबके मूल में है अपने आपको न समझना और अपने आप में विश्वास न होना। आत्मज्ञान, आत्मविश्वास और आत्मसंयम में अटूट श्रद्धा और विश्वास न होने से मनुष्य भटकता है। मनुष्य जब तक इन्हें न अपनायेगा और पूर्ण निष्काम और निर्मान न होगा, तब तक शाश्वत शांति नहीं पायेगा। ग्रंथकार कहते हैं कि आत्मनिष्ठा और आत्मविश्वास का अभाव होने से जीवन में सारी अव्यवस्था शुरू होती है। आत्मज्ञान, आत्मसंयम और आत्मविश्वास दुर्बल हुए कि देवी-देवता, भगवान, ईश्वर तथा नाना कर्मकांडों का जाल बिछ जाता है। इस जाल में उलझे हुए लोग आत्मसंयम से नहीं, पूजा-प्रार्थना से अपना उद्धार चाहते हैं जो असंभव है।

भावी ज्ञान ताओ के नाम पर पाखंड है, और यही मूढ़ता का प्रारंभ है। भावी ज्ञान, आगे होने वाली घटना का ज्ञान, भविष्य ज्ञान रखने वाले लुटेरे हैं। भविष्यज्ञान ताओ के नाम पर, सत्य के नाम पर पाखंड है। यहीं से सारी मूढ़ता का आरंभ होता है। भविष्यज्ञाता, भविष्यवक्ता जीवन में आने वाली सारी बातों को बताने वाले फलित-ज्योतिष, मंत्र-तंत्र-यंत्र का चक्कर डालकर अशिक्षित से अधिक शिक्षित जनता को लूटते हैं। भोग और मोक्ष के लिए परिश्रम और संयम छोड़कर भटकने वालों को ये खूब चूसते हैं। धूर्त अलौकिकता, चमत्कार, भविष्यज्ञान आदि का जाल फैलाते हैं और शिक्षित-अशिक्षित मूर्ख फंसते हैं। यही मूर्खता की शुरुआत है।

अतएव संत समग्रता में वास करते हैं, दरिद्रता में नहीं। वे प्रामाणिकता में जीते हैं, पाखंड में नहीं। वे अन्य का निषेध करते हैं, एवं इसका समर्थन। समग्रता है आत्मसंतोष और दरिद्रता है किसी से कुछ चाहना, चाहे वह देवता या भगवान ही क्यों न हो। संत आत्मसंतोष में जीते हैं। जो आत्मसंतुष्ट है वह संत है। संत साधु-वेष नहीं है, अपितु आत्मसंतुष्ट संत है। **संत प्रामाणिकता में जीते हैं, पाखंड में नहीं।** कारण-कार्य-व्यवस्था संबलित ज्ञान प्रामाणिक ज्ञान है। संत इसी का आधार लेकर जीवन का आचरण करते हैं। दैवीकल्पना, अवतारवाद, पैगंबरवाद, चमत्कार, अलौकिकता आदि पाखंड हैं, संत इन सबसे दूर रहते हैं। संत आत्मज्ञान, आत्मसंयम, यथार्थ बोध, आत्मसंतोष में जीवन व्यतीत करते हैं।

---

39. विनम्रता उन्नति की जड़ है

1. *Those of old who attained the One:*
Heaven attained the One and became pure.
Earth attained the One and became firm.
The Gods attained the One and became powerful.
The valley attained the One and fulfilled itself.
All things attained the One and came into existence.
Kings and princes attained the One
and became examples to the world.
All this has been effected by the One.

2. *If Heaven were not pure through it, it would have to burst.*
If Earth were not firm through it, it would have to falter.
If the gods were not powerful through it
they would have to become rigid.
If the valley were not fulfilled through it,
it would have to exhaust itself.
If things had not come into existence through it,
they would have to perish.
If kings and princes were not exalted by it,
they would have to tumble.

3. *Therefore: The noble has the lowly for its root.*
The high has the low for its foundation.
Therefore princes and kings are thus:
They call themselves 'lonely', 'orphaned', 'trifling'.
Through this they name the lowly as their root.
Is it not so?
For: without its individual parts
there is no carriage.
Do not desire the glitter of the jewel
but the raw roughness of the stone.

अनुवाद

1. *पुराने समय में जो ताओ के साथ एकरस रहे—*
स्वर्ग ताओ के साथ एकरस होकर स्वच्छ हुआ।
पृथ्वी ताओ के साथ एकरस होकर अडिग हुई।
देवता ताओ के साथ एकरस होकर शक्तिशाली हुए।
घाटी ताओ के साथ एकरस होकर स्वयं भरी-पूरी हो गई।
सभी वस्तुएं ताओ के साथ एकरस होकर अस्तित्व में आयीं।
सम्राट और राजकुमार ताओ के साथ एकरस होकर संसार के लिए उदाहरण बने।
यह सब ताओ के प्रभाव से ही हुआ।

2. *यदि स्वर्ग इसके सहयोग से स्वच्छ न हुआ होता, तो उसे फटना ही था।*
यदि पृथ्वी इसके सहयोग से अडिग न हुई होती,
तो उसको डगमगाना ही था।
यदि देवता इसके सहयोग से शक्तिशाली नहीं हुए होते,
तो वे कठोर हो गये होते।
यदि घाटी इसके सहयोग से भरी-पूरी नहीं हुई होती,
तो उसे खाली होना ही था।
यदि वस्तुएं इसके सहयोग से अस्तित्व में आयी न होतीं,
तो उन्हें नष्ट होना ही था।
यदि सम्राट और राजकुमार इसके द्वारा ऊंचे न उठे होते,
तो उन्हें ठोकर खानी पड़ती।

3. *अतएव,*
जो श्रेष्ठ है उसकी जड़ें नीचे होती हैं।
जो ऊंचा उठता है, उसका आधार नीचे होता है।
अतएव राजकुमार और सम्राट इस प्रकार हैं,
वे अपने को 'दीन'-'हीन'-'तुच्छ' कहते हैं।
ऐसा करके वे निचाई को अपनी जड़ें बनाते हैं।
क्या सचमुच ऐसा नहीं है?
क्योंकि, गाड़ी के अलग-अलग हिस्सों के बिना, उसका अस्तित्व नहीं।
मणि-माणिक्य की चमक मत चाहो,
पत्थर का अनगढ़ खुरदुरापन कहीं अच्छा है।

भावार्थ—1. पूर्वकाल में जो विश्वनियम के साथ एकात्म रहे उनकी बातें यहां की जाती हैं। द्युलोक विश्वनियम के साथ एकात्म होकर शुद्ध हुआ। पृथ्वी

विश्वनियम के साथ एकात्म होकर दृढ़ हुई। प्राकृतिक शक्तियां विश्व-नियम के साथ एकात्म होकर बलवान हुईं। घाटी विश्वनियम के साथ एकात्म होकर स्वत: ऊर्जा से पूर्ण हुई। संसार की सारी चीजें विश्वनियम के साथ एकात्म होकर सत्ता में आयीं। सम्राट और राजकुमार विश्वनियम से एकात्म होकर मानव-समाज के लिए उत्तम उदाहरण हुए। यह सब विश्वनियम से ही हुआ है।

2. यदि द्युलोक विश्वनियम के सहयोग से शुद्ध न हुआ होता, तो वह फट जाता। यदि पृथ्वी विश्वनियम से दृढ़ नहीं हुई होती, तो विचलित हो जाती। यदि प्राकृतिक शक्तियां विश्वनियम से बलशाली न हुई होतीं तो वे कठोर होकर निरर्थक हो जातीं। यदि घाटी विश्व-नियम से पूर्ण न होती तो वह ऊर्जाहीन शून्य ही रह जाती। यदि संसार की वस्तुएं विश्वनियम के सहयोग से अस्तित्व मेंं न आतीं, तो वे नष्ट ही रहतीं। यदि सम्राट और राजकुमार विश्वनियम के सहयोग से चरित्र में ऊंचे न उठे होते तो उन्हें धक्के खाने ही थे।

3. इसलिए, श्रेष्ठ की जड़ें नीचे होती हैं। ऊंचे उठने वाले का आधार नीचे होता है। वस्तुत: सम्राट और राजकुमार स्वयं को दीन, हीन और तुच्छ कहते हैं। ऐसा करके वे नीची जगह में अपनी जड़ें बनाते हैं। क्या वस्तुत: ऐसा नहीं है? क्योंकि गाड़ी के विभिन्न अंगों के संयुक्त हुए बिना उसका अस्तित्व नहीं है। हीरे-मोती की चमक-दमक मत चाहो। पत्थर का बेढंगा खुरदुरापन कहीं अच्छा है।

भाष्य—ग्रंथकार विश्वनियम को ताओ कहते हैं। उसी से स्वर्ग, पृथ्वी, देवता, घाटी, सभी वस्तुएं और सम्राट सबकी स्थिति है। स्वर्ग का अर्थ है चमकते हुए ग्रह-उपग्रहों एवं तारों का अनंत मंडल। पृथ्वी पर तो हम रहते ही हैं। देवता हैं प्राकृतिक शक्तियां—मिट्टी, पानी, आग, हवा आदि। घाटी दो पर्वतों के बीच की खाली जगह है। सभी वस्तुएं कहकर ग्रंथकार समस्त निर्मित पदार्थों की याद दिलाते हैं। फिर वे सम्राट और राजकुमार नाम लेते हैं। ग्रंथकार कहते हैं कि ये सब ताओ से, विश्वनियम से उपकृत हैं। सारा जड़-चेतन जगत विश्वनियम से ही चल रहा है। उसी से सब बलवान हैं।

ग्रंथकार कहते हैं कि विश्वनियम का आधार न मिले तो ये ग्रह-उपग्रह एवं तारे बिखर जायें, टूट-फूटकर नष्ट हो जायें; पृथ्वी विचलित हो जाये; प्राकृतिक शक्तियां भी विश्वनियम का आधार पाये बिना निरर्थक हो जायें। घाटी में रही हुई प्राकृतिक ऊर्जा से ही पर्वत और पर्वत के पदार्थ पोषण पाते हैं। यदि विश्वनियम से घाटी एकात्म न हो, विश्वनियम का आधार न पाये, तो घाटी सूनी ही रहेगी। जब उसी में ऊर्जा न रहेगी तो दूसरे को क्या देगी?

बीच में आया है, **देवता ताओ के साथ एकरस होकर शक्तिशाली हुए।** संत लाओत्ज़े की पूरी पुस्तक में देवता के लिए कोई स्थान नहीं है और न

ईश्वर के लिए। वे केवल ताओ का नाम लेते हैं जो विश्वनियम है। अतएव उनके देवता प्राकृतिक शक्तियां ही हैं। भारत में जड़-शक्ति—बाढ़, आग, सूखा आदि से दुख मिलने पर यही कहा जाता है कि यह दैवी प्रकोप है और उससे मिला दुख दैवी ताप है। दैविक ताप आधिदैविक ताप एक ही बात है—जड़-शक्ति से मिला हुआ दुख। अतएव यहां देवता का अर्थ जड़शक्ति करना स्वाभाविक ही है।

ग्रंथकार कहते हैं कि यदि विश्वनियम से यह संसार संचालित न होता तो यह अस्तित्व ही में न आता। खास बात है कि मनुष्य किसी व्यक्ति-ईश्वर की कल्पना में न पड़े, अपितु अनादि विश्वनियम को, ताओ को पहचाने और संसार के विषय में निर्भ्रांत दृष्टि अपनाये।

बात आती है कि सम्राट और राजकुमार यदि ताओ के अनुसार चलते हैं, उससे एकरस होकर आचरण करते हैं तो वे संसार में उत्तम उदाहरण के रूप में सिद्ध होते हैं। यहां का अर्थ है कि सम्राट और राजकुमार निष्काम और निर्मान होकर प्रजा की सेवा करते हैं, तो वे मानो ताओ के साथ एकरस हैं। यदि वे विलासी और अहंकारी होंगे, तो उन्हें ठोकर खाना है।

ग्रंथकार कहते हैं, **जो श्रेष्ठ है, उसकी जड़ें नीचे होती हैं। जो ऊंचा उठता है उसका आधार नीचे होता है।** जो पेड़ जितना ही ऊंचा और अधिक शाखावाला होता है, उसकी जड़ें उतनी गहरी और दूर तक होती हैं। जो भवन जितना ऊंचा होता है, उसकी नींव उतनी ही गहरी होती है। इसी प्रकार जो जितना महान होता है, वह उतना ही विनम्र और निष्काम होता है। प्रत्युत यह कहना अधिक सटीक है कि जो पूर्ण निष्काम और निर्मान होता है वह महान होता है। महानता का लक्षण ही है निर्मानता और निष्कामता।

अतएव, राजकुमार और सम्राट इस प्रकार हैं। वे अपने को दीन-हीन-तुच्छ कहते हैं। महान संत लाओत्ज़े की यह चौंका देने वाली प्रेरणा अद्भुत है। सच्चा सम्राट, राजकुमार, राजा, मंत्री, अधिकारी, अगुआ वह है जो अपने को दीन-हीन-तुच्छ माने। यह सारा जोर विनम्रता और निष्कामता में पककर काम करने के लिए है।

ग्रंथकार कहते हैं, **ऐसा करके वे निचाई को अपनी जड़ें बनाते हैं। क्या सचमुच ऐसा नहीं है? क्योंकि, गाड़ी के अलग-अलग हिस्सों के बिना, उसका अस्तित्व नहीं।** जो अपने को नीचे रखता है वही ऊंचा उठता है। विनम्र व्यक्ति की जड़ें बड़ी गहरे तक होती हैं। गाड़ी के सारे पुर्जे इकट्ठे होकर गाड़ी सार्थक होती है। पूरी प्रजा, जो एक-एक कर फैली है सबका जोड़ राष्ट्र है। उसके नाते ही राजा और मंत्री होने की सार्थकता है। अगुआ जब सबसे पीछे

रहकर सेवा करने का मन रखता है, तब वह अच्छी सेवा करता है और शांति पाता है।

मणि-माणिक्य की चमक मत चाहो, पत्थर का अनगढ़ खुरदुरापन कहीं अच्छा है। इसका लाक्षणिक अर्थ है कि ऐश्वर्य की तृष्णा न रखो, सादापन को अच्छा समझो। दुनिया की चमक-दमक वाली चीजों को पाने के भ्रम में ही मनुष्य पाप करता है। सोने के मृग में मोहकर सीता जी और महाराज राम भटक गये और घोर दुख पाये। सोने का मृग प्रतीकात्मक है। सोने का मृग कहीं होता ही नहीं। किंतु सारा संसार सोने के मृग के पीछे पागल बना भटक रहा है। संसार की मृगमरीचिका में दौड़कर सब अपनी प्यास बुझाना चाहते हैं। फल होता है कि प्यास बढ़ती जाती है और पानी कहीं नहीं मिलता। कुछ लोग ऐश्वर्य इकट्ठा भी कर लेते हैं, किंतु स्थिर तृप्ति कभी नहीं पाते। इंद्रिय-भोगों में स्थिर तृप्ति है ही नहीं, अपितु नाना दुख हैं। इसलिए संत सदैव सावधान करते हैं कि सोने के मृग के पीछे नहीं पड़ना, अन्यथा केवल रोना है। सादा और थोड़े में संतोष।

सारी चमक-दमक मिथ्या है, थोड़े दिनों की है और इसी में पड़कर सारा पाप होता है। जिसके लिए मनुष्य पाप करता है वह माना हुआ ऐश्वर्य थोड़े दिनों में खो जाता है और उसके व्यामोह में किया हुआ दुष्कर्म मन को जलाता है। सारा संबंध झूठा है, असंबंध ही स्थिर है, जो इस तथ्य को निरंतर सामने रखता है, वह किसी चमक-दमक में नहीं भूलता। शरीर से लेकर आस-पास का सारा ऐश्वर्य मिट्टी-धूल है। अतएव विवेकवान सादेपन में रहकर भीतर में अखंड शांति का अमृत-भंडार भर लेते हैं।

40. सृष्टि का मूल प्रकृति है और कोमलता जीवन की ऊंचाई है

1. *Return is the movement of DAO.*
   Weakness is the effect of DAO.

2. *All things under Heaven come about in existence.*
   Existence comes about in non-existence.

अनुवाद

1. *पीछे हटना ताओ की गति है।*
   कोमलता ताओ का प्रभाव है।

2. *स्वर्ग के नीचे सभी वस्तुएं अस्तित्व में आती हैं।*
   अस्तित्व अनस्तित्व से आता है।

भावार्थ—1. प्रकृति-क्रिया चक्राकार है। वह पीछे लौटती है। मनुष्यों में विनम्रता का आना मानवीय नैतिक नियम का प्रभाव है।

2. आकाश के नीचे सभी पदार्थ सत्ता में आते हैं। स्थूल पदार्थ सूक्ष्म पदार्थ से बनते हैं।

भाष्य—पीछे हटना ताओ की गति है। ताओ अर्थात विश्व-नियम। विश्वनियम की गति, क्रिया क्या है? पीछे लौटना। इसका अर्थ है चक्र की तरह घूमना। कारण से कार्य का बनना और कार्य-पदार्थ का विलय होकर कारण तत्त्वों में लीन हो जाना। मिट्टी में से वृक्ष, वनस्पति, सस्य आदि पैदा होते हैं और पुन: उसी में लीन हो जाते हैं और पुन: मिट्टी में से पैदा होते हैं। इस उदाहरण से आप सारी दृश्यमान भौतिक वस्तुओं को समझ सकते हैं। अनादिकाल से मूल जड़-प्रकृति—मिट्टी, पानी, आग, हवा के समुच्चय से असंख्य कार्य-पदार्थ बनते और पुन: उसी में लीन होते रहे हैं। यह जड़-प्रकृति की अपनी स्वाभाविक क्रिया है। इसमें कोई व्यक्ति-ईश्वर करने वाला नहीं है। बादल, वर्षा, छह ऋतुओं का परिवर्तन तथा असंख्य वस्तुओं की गतिशीलता मूल जड़प्रकृति के अनादि नियमों से स्वत:चालित है।

ऊपर ताओ के द्वारा जड़-सृष्टि के विषय में निर्देश हुआ कि ताओ का, विश्व का नियम है परिवर्तन, लौटना, चक्राकार कारण-कार्य का प्रवाह बने रहना। अब अगली पंक्ति में ग्रंथकार मानस-सृष्टि पर ताओ का प्रभाव बताते हैं।

कोमलता ताओ का प्रभाव है। आध्यात्मिक ताओ, आध्यात्मिक नियम क्या है? मन की शांति जीवन की परम उपलब्धि है। मन तब शांत होगा जब उसकी सारी ग्रंथियां कट जायें और वह पूर्ण निर्ग्रंथ होकर नितांत कोमल हो जाये। अतएव यदि किसी का मन कोमल हो गया है, तो यह ताओ का प्रभाव है। जिसने अपने मन को कोमल बनाया, निश्चित है उसने आध्यात्मिक ताओ को ठीक से समझा है। बच्चे की तरह सरल-हृदय होना मनुष्य की श्रेष्ठता है।

संसार के लोग क्यों दुखी हैं? अहंकार-वश। असली 'मैं' आत्मा है जो शुद्ध चेतन है, निर्विशेष है, आकृति-रहित है। मैं केवल शुद्ध चेतन हूं। इस भाव में रहने वाला कोमल रहेगा। जो नकली 'मैं' शरीर तथा उसके नाम, रूप, गुण, कर्मों में अपना तादात्म्य करेगा वह अहंकार में डूबा हर क्षण दुखी रहेगा। अतएव यदि किसी के जीवन में पूर्णरूपेण कोमलता है, निर्हंकारता है, तो उसके ऊपर ताओ का प्रभाव है। उस मनुष्य ने आध्यात्मिक नियम समझकर सारा अहंकार छोड़ दिया है और पूर्ण निर्मल हो गया है।

स्वर्ग के नीचे सभी वस्तुएं अस्तित्व में आती हैं। अस्तित्व अनस्तित्व से आता है। स्वर्ग के नीचे, आकाश के नीचे, वस्तुत: देश-काल के आयाम में सभी वस्तुएं बनती, बदलती और विलीन होती हैं। **अस्तित्व अनस्तित्व से आता है।** अस्तित्व का अर्थ है होना, अनस्तित्व का अर्थ है न होना। इसके समानांतर शब्द हैं सत्ता और असत्ता। सत्ता असत्ता से नहीं आती है। अस्तित्व अनस्तित्व से नहीं आता है। अतएव यहां '**अनस्तित्व' न होना या असत्ता नहीं है,** अपितु अदृश्य सूक्ष्म है। इसलिए 'अस्तित्व अनस्तित्व से आता है, इसका अर्थ है, 'स्थूल सूक्ष्म से होता है।' सूक्ष्म कारणतत्त्वों से स्थूल भौतिक पदार्थ प्रकट होते हैं।

41. सच्चे संत को समझना कठिन है

1. *If a sage of the highest order hears about DAO*
   he is keen to act in accordance with it.
   If a sage of the middle order hears about DAO
   he half believes and half doubts.
   If a sage of the lower order hears about DAO
   he laughs loudly about it.
   If he does not laugh loudly
   then it was not yet the true DAO.

2. *Therefore the poet has these words:*
   'The clear DAO appears to be dark.
   The DAO of progress appears as retreat.
   The smooth DAO appears to be rough.
   The highest Life appears as a valley.
   The highest purity appears as shame.
   The broad Life appears to be insufficient.
   The strong Life appears to be stealthy.
   The true essence appears to be changeable.
   The great quadrant has no corners.
   The great instrument is completed late.
   The great tone has an inaudible sound.
   The great image has no form.'

3. *DAO in its seclusion has no name.*
   And yet it is precisely DAO
   that is good at giving and completing.

अनुवाद

1. *उच्च श्रेणी का संत जब ताओ के विषय में सुनता है,*
   वह उसके अनुसार आचरण करने को उत्सुक होता है।

मध्यम श्रेणी का संत जब ताओ के विषय में सुनता है,
वह आधा विश्वास करता है, और आधा संदेह।
कनिष्ठ श्रेणी का संत जब ताओ के विषय में सुनता है,
वह इस पर जोरों से हंसता है।
यदि उस पर जोरों से हंसा न जा सके,
तो वह वास्तविक ताओ नहीं।

2. *अतएव,*
पहुंचे हुए संतों के शब्दों में,
'स्पष्ट ताओ अंधकारपूर्ण दिखता है।
ताओ की प्रगति उसका पीछे हटना दीख पड़ता है।
प्रशस्त ताओ ऊबड़-खाबड़ दिखता है।
श्रेष्ठ जीवन घाटी की तरह रिक्त जान पड़ता है।
पूर्ण पवित्रता लज्जा जान पड़ती है।
महान जीवन अपर्याप्त मालूम पड़ता है।
ठोस जीवन प्रच्छन्न जान पड़ता है।
मूल-सार परिवर्तनशील जान पड़ता है।
महा अंतरिक्ष के कोने नहीं होते।
महान प्रतिभा प्रौढ़ होने में समय लेती है।
महान संगीत धीमा सुनाई देता है।
महान छाया का कोई रूप नहीं होता।'

3. *ताओ का अपने अकेलेपन में कोई नाम नहीं।*
यद्यपि निश्चित रूप से यह ताओ ही है,
जो दूसरों को देने और उन्हें पूर्ण करने में सक्षम है।

भावार्थ—1. ऊंची श्रेणी के संत जब ताओ की बात सुनते हैं, तो वे उसके अनुसार अपने जीवन की रहनी बनाने में लग जाते हैं। मध्यम श्रेणी का साधक जब उसके विषय में सुनता है, तो वह ताओ की कुछ बातों पर विश्वास करता है और कुछ पर नहीं। जब कनिष्ठ श्रेणी का साधक उसे सुनता है, तब वह उस पर जोरों से हंसता है। यदि ताओ की बात पर जोरों से हंसा न जा सके, तो वह सही ताओ नहीं।

2. इसलिए पहुंचे हुए संत कहते हैं कि ताओ स्पष्ट है, परंतु लोगों को वह अंधकार से ढका दीखता है। जो लोग ताओ के अनुसार चलते हैं उनकी प्रगति लोगों को अवगति दिखती है। उत्तम ताओ कुरूप दिखता है। ताओ से पूर्ण श्रेष्ठ-जीवन घाटी की तरह शून्य दिखता है। ताओ से पूर्ण पवित्र जीवन

लज्जाजनक जान पड़ता है। ताओ से पूर्ण महा जीवन अधूरा लगता है। दृढ़ धरातल पर स्थिर जीवन छिपा हुआ लगता है। मौलिक सत्य बदलता हुआ लगता है। व्यापक आकाश की कोई सीमा नहीं होती। महान प्रतिभा धीरे-धीरे पकती है। उच्च संगीत धीमा सुनायी पड़ता है। विशाल छाया का कोई आकार नहीं होता।

3. शुद्ध ताओ का कोई नाम नहीं है, यद्यपि यह निश्चित ताओ ही है, जो अन्य को देने और पूर्ण करने में शक्तिशाली है।

भाष्य—उच्च श्रेणी का संत जब ताओ के विषय में सुनता है, वह उसके अनुसार आचरण करने को उत्सुक हो जाता है। संसार अपने प्राकृतिक नियमों से चलता है। इसके संचालन के लिए किसी व्यक्ति-ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। दैवी कल्पना, अवतारवाद, पैगंबरवाद, चमत्कार, अलौकिकता, भविष्यज्ञान आदि भ्रम से उत्पन्न हैं जिनमें मनुष्य भटकता है। आत्मा का कल्याण करने वाला कोई देव नहीं है, किंतु स्वयं के आत्मबोध, आत्मशोध हैं। आधिभौतिक और आध्यात्मिक नियमों को पहचानकर स्वयं हमें आचरण करना है और सबसे निष्काम और निर्मान होकर अंतर्मुख हो जाना है। 'नॉन डूइंग' और 'एम्पटीनेस'—निष्कर्म और शांत हो जाना है। यही ताओ संबंधित उपदेश है। इस प्रकार ताओ संबंधी उच्च ज्ञान जब उच्च विचार का मनुष्य सुनता है, तब वह इसी के अनुसार अपना आचरण करने लगता है और इस अभ्यास में वह निर्भ्रांत और प्रशांत हो जाता है।

मध्यम श्रेणी का संत जब ताओ के विषय में सुनता है, वह आधा विश्वास करता है, और आधा संदेह। जिसकी बुद्धि पूर्ण निष्पक्ष नहीं है और अंत:करण पूर्ण शुद्ध नहीं है, जब ऐसा मनुष्य ताओ संबंधी उपदेश सुनता है तब वह उसके विषय में पूरा विश्वास नहीं कर पाता है। किसी बात पर विश्वास करता है और किसी बात पर संदेह करता है। उसकी स्थिति मिलीजुली रहती है।

कनिष्ठ श्रेणी का संत जब ताओ के विषय में सुनता है, वह इस पर जोरों से हंसता है। यदि उस पर जोरों से हंसा न जा सके, तो वह वास्तविक ताओ नहीं। जो नाना अंधविश्वास में डूबा है, घोर विषयासक्त है, बिना श्रम और साधना के केवल कर्मकांड और पूजापाठ से सब ऋद्धि-सिद्धि और भोग-मोक्ष पाने के भ्रम में है; वह विश्वनियम, संयम, साधना की बातों का मखौल उड़ाता है। विषयासक्त तथा अंधविश्वासी मनुष्य सत्य की हंसी करेगा ही; क्योंकि सत्य उसे पच नहीं सकता।

अतएव पहुंचे हुए संतों के शब्दों में इसलिए उच्चतम संत कहते हैं—

स्पष्ट ताओ अंधकारपूर्ण दिखता है। विश्वनियम स्पष्ट है। अनंत विश्व-ब्रह्मांड अपने नियमों से निरंतर गतिशील है; लंपटता और निश्शीलता का आचरण करने से मनुष्य का मन नरक बना रहता है; और संयम तथा शील के आचरण से चलने वाला परम शांति प्राप्त करता है; इतना स्पष्ट ज्ञान मनुष्य को अंधकारमय दिखता है।

ताओ की प्रगति उसका पीछे हटना दीख पड़ता है। जीवन में ताओ की प्रगति है जगत-प्रपंच से रहित होकर निष्काम, निर्मान और अंतर्मुख हो जाना। रजोगुणी मनुष्य को ऐसा आदमी देखकर लगेगा कि यह तो व्यर्थ मनुष्य है। इसने अपना जीवन खो दिया। मनुष्य को भौतिक वैभव दृष्टि में आता है, आत्मिक वैभव बाह्य दृष्टि से देखा नहीं जा सकता।

प्रशस्त ताओ ऊबड़-खाबड़ लगता है। भौतिक और नैतिक नियम प्रशंसनीय हैं, स्तुत्य, श्रेष्ठ एवं सत्य हैं। यही तो ताओ है, किंतु भ्रमग्रस्त मनुष्य को वह कुरूप लगता है, अस्वाभाविक और संकुचित लगता है।

श्रेष्ठ जीवन घाटी की तरह रिक्त जान पड़ता है। पूर्ण आत्मसंतुष्ट मनुष्य का जीवन श्रेष्ठ है। जिनके मन में कोई विकार नहीं, कोई वेदना एवं पीड़ा नहीं, जो सब समय आत्मलीन, आत्मानंद, स्वरूपनिमग्न हैं, उनका जीवन श्रेष्ठ है। ऐसे लोग बाहर से अकिंचन दिखते हैं, सादे, सरल और कुछ नहीं के समान। अतएव रजोगुणी मनुष्य को लगता है कि इनका जीवन तो घाटी की तरह शून्य जगह मात्र है, बिलकुल निरर्थक।

पूर्ण पवित्रता लज्जा जान पड़ती है। पूर्ण पवित्रता है संयमित जीवन। रजोगुणी को वह लज्जाजनक लगता है। उसे लगता है कि इतना सिमिटकर बैठ जाना कोई जीवन है? पूर्ण आत्मशुद्धि, पूर्ण दुखहीनता, पूर्ण प्रशांति पूर्ण पवित्रता है। ऐसे पवित्र जीवन को देखकर रजोगुणी को लगता है कि इसने अपना जीवन व्यर्थ खो दिया। इसमें न कोई कला है न विद्या है, न इसके पास ऐश्वर्य है, यह व्यर्थ आदमी है। लज्जा करने योग्य है।

महान जीवन अपर्याप्त मालूम पड़ता है। अखंड आत्मतृप्त, आत्मसंतुष्ट जीवन रजोगुणी को अधूरा लगता है। क्योंकि वह भौतिक ऐश्वर्य को संपन्नता समझता है। आत्मसंतोष का जो आंतरिक ऐश्वर्य है उसका उसे पता नहीं है। वह केवल बाह्य दृष्टिवाला है। इसलिए आत्मसंतुष्टि का महान जीवन उसे अधूरा लगता है।

ठोस जीवन प्रच्छन्न जान पड़ता है। जिसकी सारी इच्छाएं समाप्त हो गयी हैं, सारी अहंता-ममताएं मर गयी हैं, जो अपने अमर आत्मा में निरंतर रम रहा है; इसलिए जिसका सारा भय समाप्त हो गया है, ऐसा पूर्ण निष्काम और निर्भय

जीवन ठोस जीवन है। ऐसा जीवन रजोगुणी मनुष्य को दबा हुआ, छिपा हुआ, कुचला हुआ लगता है।

मूल-सार परिवर्तनशील जान पड़ता है। मूल-सार मौलिक-अस्तित्व, मूल-सत्ता स्व है, आत्मा है। रजोगुणी मनुष्य को वह मिटनेवाला लगता है। आत्मा को समझने की उसमें बुद्धि ही नहीं होती। वह इतना ही समझता है कि मैं मर जाऊंगा। उसे अपने अमर आत्मा का न ज्ञान है और न विश्वास।

महा अंतरिक्ष के कोने नहीं होते। कोने कमरे के होते हैं, कक्ष के होते हैं, निस्सीम आकाश के कोने नहीं होते। इसी प्रकार आत्मा नष्ट नहीं होता। वह नित्य है।

महान प्रतिभा प्रौढ़ होने में समय लेती है। संसार की बड़ी-बड़ी प्रतिभाएं तुरंत उजागर नहीं हो गयी हैं। धीरे से सिद्धि मिलती है। इसलिए मनुष्य को धैर्य रखकर साधना में लगे रहना चाहिए।

महान संगीत धीमा सुनाई देता है। इसी तरह आंतरिक यात्रा की बात धीरे-धीरे समझ में आती है। मनुष्य ऐसी बातें निरंतर सुने और उनका निरंतर आचरण करे, तब उसे उसका बोध होगा।

महान छाया का कोई रूप नहीं होता। पेड़ की छाया, मकान की छाया, मनुष्य की छाया के आकार होते हैं, परंतु जब सूरज पृथ्वी की आड़ में चला जाता है तब जो छाया बनती है, अंधियारा होता है, उसका कोई आकार नहीं होता। वह व्यापक होता है। इसी प्रकार जब साधक की सारी कामनाएं बुझ जाती हैं, तब उसके हृदय में अनंत शांति घटित होती है।

ताओ का अकेलेपन में कोई नाम नहीं। यद्यपि निश्चित रूप से यह ताओ ही है, जो दूसरों को देने और उन्हें पूर्ण करने में सक्षम है। विश्व-नियम ताओ है। वह शुद्ध रूप में अनाम है, परंतु इसी से सारी जड़-चेतन-सृष्टि फलती-फूलती है।

चांद, सूर्य, तारे, पृथ्वी, वन, पर्वत, हिमालय, रेगिस्तान, विविध प्राणियों की देहें, विविध वस्तुएं एवं सारा सृष्टि-प्रपंच ताओ की, विश्व-नियम की देन है। नियम अदृश्य है, किंतु सारा दृश्यमान उसी का खेल है।

42. दीनता, अकेलापन तथा अल्पता का महत्त्व

1. *DAO generates the One.*
   The One generates the Two.
   The Two generates the Three.
   The Three generates all things.
   All things have darkness at their back
   and strive towards the light,
   and the flowing power gives them harmony

2. *What men hate*
   is forlornness, loneliness, being a trifle.
   And yet, princes and kings
   choose these to describe themselves.
   For things are either increased through diminution or
   diminished through increase.

3. *I, too, teach what others teach:*
   'The strong do not die a natural death.'
   This I will make the departure point of my teaching.

अनुवाद

1. *ताओ एक को उत्पन्न करता है।*
   वही एक दो को उत्पन्न करता है।
   वे ही दो तीन को उत्पन्न करते हैं।
   उन्हीं तीनों से सब वस्तुएं उत्पन्न होती हैं।
   सभी वस्तुओं के पृष्ठ भाग में अंधेरा होता है,
   और वे प्रकाश की ओर गति करती हैं,
   और प्रवाहित शक्ति उन्हें लयबद्धता प्रदान करती है।

2. *मनुष्य जिनसे घृणा करते हैं,*
   वे हैं दीनता, अकेलापन और अल्पता।

तो भी राजकुमार और शासक,
अपने को इन्हीं नामों से पुकारते हैं।
क्योंकि चीजें कभी घटती हैं बढ़ाने से,
कभी बढ़ती हैं घटाने से।

3. *मैं भी वही सिखाता हूं जो दूसरे सिखाते हैं,*
'बलवान स्वाभाविक मौत नहीं मरते।'
इसे ही मैं अपनी शिक्षा का प्रस्थान-बिंदु कहूंगा।

भावार्थ—1. ताओ एक को पैदा करता है, एक दो को तथा दो तीन को पैदा करते हैं, फिर तीन से सब कुछ पैदा होता है। सभी पदार्थों के पिछले हिस्से में अज्ञात का अंधकार रहता है। वे आगे विकास के प्रकाश में गतिशील होते हैं। इन्हें प्रकृति की प्रवहमान शक्ति व्यवस्था देती है।

2. मनुष्य जिनसे घृणा करते हैं वे हैं दीनता, अकेलापन और अल्पता; तो भी सम्राट, शासक और राजकुमार स्वयं को इन्हीं नामों से जोड़ते हैं। क्योंकि वस्तुएं कभी बढ़ाने से कम होती हैं और घटाने से अधिक बढ़ती हैं।

3. जैसे दूसरे लोग शिक्षा देते हैं, मैं भी वैसी ही शिक्षा देता हूं। शक्तिशाली माने गये हिंसक लोग स्वाभाविक मौत नहीं मरते। मैं अपनी शिक्षा का यही आधार बिंदु मानता हूं।

भाष्य—ताओ एक को उत्पन्न करता है, वही एक दो को उत्पन्न करता है, वे ही दो तीन को उत्पन्न करते हैं। उन्हीं तीनों से सब वस्तुएं उत्पन्न होती हैं। ये एक, दो और तीन क्या हैं, इसके विषय में भाष्यकारों की केवल क्लिष्ट कल्पनाएं हैं। वस्तुतः संत लाओत्ज़े के जीवनकाल से बारह सौ वर्ष पूर्व चीन-देश में बनी पुस्तक जो वहां का वेद है, उसका नाम है—**'आई चिंग'** अर्थात 'परिवर्तन की पुस्तक'। उसमें उक्त शैली का उल्लेख है। वहीं से संत लाओत्ज़े ने अपनी रचना में उद्धृत कर दिया है। इसका कोई गहरा अर्थ नहीं है, अपितु सृष्टि के विषय में एक बौद्धिक व्यायाम है। खास बात है मूल जड़ प्रकृति से निरंतर असंख्य कार्य-पदार्थ बनते हैं और मिटकर पुनः प्रकृति में लीन होते रहते हैं।

सभी वस्तुओं के पृष्ठ-भाग में अंधेरा होता है, और वे प्रकाश की ओर गति करती हैं और प्रवाहित शक्ति उन्हें लयबद्धता प्रदान करती है। संसार के जितने पदार्थ पैदा होते हैं, वे पैदा होने से पूर्व सूक्ष्म प्रकृति में ही अज्ञात रूप में रहते हैं। इसलिए हर पदार्थ का पृष्ठ भाग, पिछला हिस्सा अंधकार में रहता है। हमारे आंगन में दस वर्ष से एक वृक्ष उगा और विशाल रूप होकर खड़ा है। दस वर्ष के पहले वह कहां था, इसका कुछ पता नहीं है। हमारा अपना माना

गया शरीर आज से छिहत्तर वर्ष पूर्व कहां था, यह अज्ञात है। अतएव हर उत्पन्न हुई वस्तु का पृष्ठ भाग अंधकार में है, पिछली स्थिति अज्ञात है। इतना ही कह सकते हैं कि मूल प्रकृति में कारण रूप में विद्यमान थी। निर्मित वस्तुओं का पृष्ठभाग तो अंधकार में है, परंतु आगे वे प्रकाश की ओर गति करती हैं। अर्थात विकास करती हैं, स्वयं को विविध रूपों में प्रकट करती हैं। अंकुर पौधा बनता है, पौधा वृक्ष बनता है, फिर उसमें फूल-फल आते हैं। शिशु बालक होता है, बालक कुमार, कुमार जवान, जवान परिपक्व आदि।

प्रवाहित शक्ति उन्हें लयबद्धता प्रदान करती है। प्रवाहित शक्ति है प्रकृति, वह निर्मित वस्तुओं के विकास में सहयोग करती है। खेत में बीज पड़ते हैं, फिर अंकुर, फिर पौधे, फिर सस्य-फसल। खेतों में वर्ष में दो-दो, तीन-तीन बार फसलें उगती हैं, परंतु खेत गहरे नहीं होते जाते। जब खेत में से फसल बराबर उगती है, तो खेत गहरा होता जाना चाहिए, परंतु ऐसा नहीं होता। वस्तुत: पूरे प्रकृति-प्रवाह से फसल उगती और बढ़ती है, लयबद्धता प्राप्त करती है। विशाल वृक्ष की जड़ के नीचे खोदकर देखो तो कहीं खाली एवं पोल नहीं मिलेगा। वृक्ष प्रवहमान प्रकृति से ऊर्जा ग्रहण करते हैं, ऐसे ही हर निर्मित वस्तु की बात है।

मनुष्य जिनसे घृणा करते हैं, वे हैं दीनता, अकेलापन और अल्पता। असहाय व्यक्ति को दीन कहा जाता है। अतएव असहायता दीनता है। कोई नहीं चाहता कि मैं असहाय और दीन रहूं। अकेलापन भी खलता है। अल्पता, कम होना भी खलता है। किंतु विवेकवान सभी स्थितियों का सामना प्रसन्नतापूर्वक करते हैं। हम जिससे घृणा करते हैं, वह हमारे ऊपर आ सकता है। राजकुमार श्रीराम को पत्नी तथा भाई के सहित चौदह वर्ष वन में झोपड़ा बनाकर रहना पड़ा था। पत्नी-वियोग का दुख सहना पड़ा था। जिसका साम्राज्य सिंध से लेकर बंगाल तथा हिमालय से दक्षिणी भारत तक फैला था, उस सम्राट अशोक को बुढ़ापा में अत्यंत अल्पता में जीना पड़ा था। वह एक दिन भिक्षुओं को दान में केवल एक आंवला-फल दे सका था। जो 1917 ई० के आस-पास रूस का प्रधानमंत्री था, वह 'करेंसकी' लेनिन के गद्दी पर आने के बाद लापता हो गया था। फिर 1967 ई० में पता चला कि करेंसकी अमेरिका में एक किराने की दुकान चलाकर जीवन-निर्वाह कर रहा है। फैजाबाद के एक ब्राह्मण देवता के दो लड़के मर गये। उसी शोक में पत्नी चल बसी। ब्राह्मण देवता असहाय हो गये। उनके खेत और घर को कुल-गोत्रवालों ने हड़प लिया। वे अयोध्या में बस स्टेशन के सामने बनी बिड़ला धर्मशाला में रहने लगे और बिड़ला-परिवार ने धर्मशाला के मैनेजर को आज्ञा दे दी कि इस असहाय व्यक्ति को धर्मशाला की तरफ से भोजन, वस्त्र और आवास दिया जाये।

जो घटना दूसरों पर घटती है, वह हम पर भी घट सकती है। हम भी दूसरे सरीखे ही मनुष्य हैं। इसलिए यहां अहंकार करने की गुंजाइश नहीं है। अंधे, बहरे, कोढ़ी, लकवाग्रस्त, अकेले, दरिद्र, असहाय मनुष्य देखे जाते हैं; और वे मेरे ही समान हैं। अतएव उन जैसी स्थितियों में से कोई स्थिति मेरे ऊपर भी आ सकती है। यदि शरीर अभी रहा तो बुढ़ापा, जर्जरता, दुर्बलता आने ही हैं और मृत्यु तो सबके ऊपर आना पक्का है।

संत लाओत्ज़े कहते हैं, **दीनता, अकेलापन और अल्पता से लोग घृणा करते हैं, तो भी राजकुमार और शासक अपने को इन्हीं नामों से पुकारते हैं; क्योंकि चीजें कभी घटती हैं बढ़ाने से, कभी बढ़ती हैं घटाने से।** चीन में यह रस्म था कि वहां के सम्राट, राजकुमार एवं शासक अपने को दीन, अकेला और अल्प कहते थे। यह उनके सद्गुण थे। प्रजा के नाते शासक शासक है। प्रजा हाथ खींच ले, तो राजा किसका शासक होगा?

चीजें कभी घटती हैं बढ़ाने से, कभी बढ़ती हैं घटाने से। तौलते समय तराजू का जो पलड़ा नीचे जाता है उसका माल अधिक होता है और ऊंचे जाने वाले का माल कम होता है। दुबला-पतला दुतिया का चंद्रमा नित्य बढ़ता है, किंतु पूर्णिमा का भरापूरा चंद्रमा नित्य घटता है। अहंकारी मनुष्य नीचे जाता है, विनम्र ऊपर उठता है। जो व्यक्ति कंजूसी करके धन का संग्रह मात्र करता है, उसका धन लुट जाता है और जो उसे सेवा में लगाता है उसका धन बढ़ जाता है।

दीनता, अकेलापन और अल्पता सबके जीवन की परम अवधि है। बड़े-बड़े शासक, पूंजीपति, जगद्गुरु, विद्वान, कलाकार अंत में असहाय होकर बिस्तर पर पड़ जाते हैं और उनके लिए थोड़ी वस्तुएं ही काम आती हैं, शेष ऐश्वर्य बाहर पड़ा और खड़ा रह जाता है। जो मनुष्य विवेक से दीनता, अकेलापन और अल्पता स्वीकार लेता है, उसके जीवन में हार नहीं होती। वह विश्वविजयी हो जाता है।

मैं भी वही सिखाता हूं जो दूसरे सिखाते हैं। 'बलवान स्वाभाविक मौत नहीं मरते।' इसे ही मैं अपनी शिक्षा का प्रस्थान बिंदु कहूंगा। 'बलवान स्वाभाविक मौत नहीं मरते।' यहां का बलवान हिंसकी है, क्रूर है। जेम्स लेगी ने अपने अनुवाद में लिखा है, "The violent and strong do not die their natural death." अर्थात हिंसक और बलवान स्वाभाविक मौत नहीं मरते। यही अनुवाद 'Ren Jiyu' रेन जियू का भी है तथा अन्य के भी। अतएव यहां बलवान का अर्थ केवल शक्तिशाली नहीं है, अपितु हिंसक है। जो दूसरों की हिंसा करता है, वह प्राय: स्वाभाविक मौत नहीं मरता। वह भी दूसरों द्वारा मारा जाता है। इसमें अपवाद हैं दुनिया के कुछ महापुरुष, जिन्हें शासक और संप्रदायी लोग

अपने प्रमाद में न समझकर मार डाले; जैसे ईसा, सुकरात, मंसूर, दयानंद, महात्मा गांधी आदि।

संत लाओत्ज़े कहते हैं कि मेरे उपदेश भी यही हैं कि मनुष्य अपने अंत के दिन को अपनी दृष्टि में हरक्षण रखे कि उसे अंततः दीन, अकेला, और अल्प होना है। जो इस तथ्य को देखता रहेगा, वह हिंसकी नहीं होगा, किसी पर कब्जा नहीं करना चाहेगा, स्वामित्व की इच्छा नहीं रखेगा। अतएव वह किसी कलह में नहीं पड़ेगा।

संत लाओत्ज़े की शिक्षा का आधार-बिंदु है दीनता, अकेलापन और अल्पता। विनम्र बन जाओ, अपने अकेलेपन का सदैव ख्याल रखो और थोड़े में निर्वाह लो। अंत में सबको इस दशा में पहुंचना है।

43. कर्म-शून्यता जीवन की उच्चतम स्थिति है

1. *The softest thing on earth*
   overtakes the hardest thing on earth.
   The non existent overakes even that
   which has no interstices.
   From this one recognises the value of non-action.

2 *Teaching without words, the value of non-action*
   is attained by but few on earth.

अनुवाद

1. *संसार का कोमलतम तत्त्व,*
   कठिनतम से आगे निकल जाता है।
   जो रूपरहित है,
   वह उसमें प्रवेश कर जाता है, जो दरार हीन है।
   इससे कर्म-शून्य का महत्त्व समझ में आता है।

2. *बिना शब्दों का ज्ञान है कर्म-शून्य का महत्त्व,*
   जिसे इस पृथ्वी पर कुछ ही लोग समझ पाये हैं।

भावार्थ—1. दुनिया का सर्वाधिक कोमल पदार्थ सर्वाधिक कठोर से आगे निकल जाता है। अ-रूप पदार्थ दरार-रहित पदार्थ में प्रवेश कर जाता है। इसी से कुछ न करने का महत्त्व समझ में आता है।

2. बिना बोले का ज्ञान कुछ न करने का महत्त्व है। इस तथ्य को समझने वाला इस संसार में कोई विरला है।

भाष्य—संसार का कोमलतम तत्त्व कठिनतम से आगे निकल जाता है। जल संसार में कोमल तत्त्व है, किंतु उसका प्रपात धीरे-धीरे कठोर पर्वत को फोड़ देता है, पत्थर को तोड़ देता है। उसका अपना कोई आग्रह नहीं, जैसी जगह पाता है उसी आकार में अपने को ढाल लेता है। ऐसा निर्मानी कि नीचे-से-नीचे चला जाता है और सबको जीवन-दान करता है। वायु संसार का कोमलतम तत्त्व है, परंतु वह बड़े-बड़े कठोर पेड़ों को उखाड़ देता है, तोड़ देता है और बहुत शीघ्र सबसे आगे निकल जाता है। इसी प्रकार जो मनुष्य आग्रह-रहित है, पर-दोष-दर्शन से दूर है, परनिंदा नहीं करता, सबकी उलटी-सीधी बातें निर्विकार होकर सह लेता है, अहंकार शून्य रहता है, कलह-रहित और

विनम्र है, वह बड़े-बड़े कठोर स्वभाव वाले अहंकारियों के ऊपर विजय पाता है। आंधी में बड़े-बड़े पेड़ उखड़ जाते हैं, किंतु जमीन में चिपकी घास का कुछ नहीं बिगड़ता। अहंकार पर विनम्रता विजय पाती है।

जो रूप-रहित है, वह उसमें प्रवेश कर जाता है, जो दरार-हीन है। ठंडक और गरमी दोनों रूप-रहित हैं और ये दरार-रहित वस्तु में भी प्रवेश कर जाती हैं। **इसी से कर्म-शून्य का महत्त्व समझ में आता है।** एक ऐसी स्थिति होती है जब साधक बाहर-भीतर कर्म-शून्य होकर रहता है। मनुष्य का स्वत्व, आत्मा अक्रिय है; क्योंकि वह शुद्ध-बुद्ध है। देहोपाधि में वह क्रियाशील होता है। यदि उसे पुन: अपने स्वरूप में लौटना है, स्व में स्थित होना है, तो अक्रियता की स्थिति में रहने की साधना करना चाहिए। कठिन अविद्या की दीवार को अक्रियता की साधना ही तोड़ पायेगी। वासना-शून्य मौन अक्रियता की साधना है। बाहरी इंद्रियां शांत और भीतर मन पूर्ण निर्विकल्प, यह अक्रियता की स्थिति है। यही कर्म-शून्य दशा है। इस स्थिति में परिपक्व साधक निरंतर मुक्त ही है।

इसमें प्रश्न हो सकता है कि अक्रिय व्यक्ति तो व्यर्थ हो जाता है। जो कभी कुछ नहीं करता वह निकम्मा है। यदि कोई कभी कुछ नहीं करता है और मन भी सब समय निर्विकल्प रहता है, तो ऐसा व्यक्ति समाज के लिए बहुत बड़ा प्रेरणा-स्रोत होगा। सारा संसार मानसिक चिंता में जल रहा है। कोई ऐसा व्यक्ति हो जो सब समय समाधि में हो तो वह संसार के लिए वरदान होगा। परंतु सत्यता यह है कि साधक समय-समय से अक्रिय साधना में रहता है, शेष समय कर्मशील रहता है। निर्विकल्प-समाधि में पहुंचे हुए संत लोक-कल्याण के कार्य में गतिशील रहे हैं। समाधि-लाभ जिसको है, वह निकम्मा नहीं होता। उसी का काम जीव को दुखहीन दशा में पहुंचाने में समर्थ है। मृत्यु के समय सब अक्रिय हो जाते हैं। वह धन्य है जो जीवन में रहते हुए अक्रिय दशा में स्थित होता रहता है। वासना-शून्य मौन कर्मशून्य एवं अक्रिय स्थिति है।

बिना शब्दों का ज्ञान है कर्म-शून्य का महत्त्व, जिसे इस पृथ्वी पर कुछ ही लोग समझ पाये हैं। गुरु-संत जन जो मुख से बोलकर उपदेश देते हैं, उससे केवल संकेत होता है। कर्म-शून्य निर्विकल्प समाधि है। यह आत्म-साक्षात्कार की स्थिति है। यही है अपरोक्ष अनुभव। सद्गुरु कबीर ने कहा है—

मसि बिनु द्वाइत कलम बिनु कागद, बिनु अक्षर सुधि होई।
सुधि बिनु सहज ज्ञान बिनु ज्ञाता, कहहिं कबीर जन सोई।

(बीजक, शब्द 16)

संत लाओत्ज़े कहते हैं, इस कर्म-शून्य की स्थिति को पृथ्वी पर कुछ ही लोग समझ पाये हैं। उनका यह कथन परम यथार्थ है।

44. स्व, स्वरूपस्थिति, स्वसंतुष्टि ही परम उपलब्धि है

1. *Name or person:*
   which is closer?
   Person or possession:
   which is more?
   Winning or losing:
   which is worse?

2. *But then:*
   whosoever hankers after other things
   inevitably uses up the great things.
   Whosoever amasses things
   inevitably loses the important things.

3. *Whosoever is self-sufficient*
   does not come to shame.
   Whosoever knows how to practice restraint
   does not get into danger and thus can last forever.

अनुवाद

1. *सुयश अथवा स्व,*
   कौन अधिक निकट है?
   स्व अथवा संपत्ति,
   किसका अधिक मूल्य है?
   जीत अथवा हार,
   कौन बड़ी बुराई है?

2. *किंतु फिर भी,*
   जो अन्य वस्तुओं के पीछे भागता है,

वह निश्चय ही महान उपलब्धि से चूकता है।
जो वस्तुओं के अधिकाधिक संग्रह में पड़ता है,
निश्चय ही, वह महत्त्वपूर्ण वस्तु से वंचित रह जाता है।

3. *जो आत्मसंतुष्ट है,*
वह लज्जित नहीं होता।
जो संयम करना जानता है,
वह खतरे में नहीं पड़ता,
और वह सदैव के लिए सुरक्षित हो जाता है।

भावार्थ—1. सुकीर्ति अथवा अपना आपा, क्या अपने अधिक पास में है? अपने आप की अधिक कीमत है कि धन-दौलत की? विजय बुरी बात है कि हार?

2. परंतु फिर भी जो मनुष्य दूसरे पदार्थों के पीछे भागता है, पक्की बात है कि वह बड़ी सफलता को खोता है। जो मनुष्य वस्तुओं का अधिक संग्रह करने के चक्कर में पड़ता है, पक्की बात है कि वह सर्वोच्च वस्तु से दूर रह जाता है।

3. जो मनुष्य आत्मसंतुष्ट है, उसे पश्चाताप नहीं करना पड़ता। जो संयम करना जानता है, वह दुख में नहीं पड़ता, अपितु वह सदा के लिए सुरक्षित हो जाता है।

भाष्य—सुयश अथवा स्व, कौन अधिक निकट है? सुयश है सुकीर्ति, चारों तरफ से अपने नाम की अच्छी चर्चा। निश्चित है, यह अच्छे आचरण के फल में होता है। जो लोग अच्छे काम करते हैं, अपने पर संयम और दूसरे की सेवा, उनका सुयश होता है। वस्तुत: कर्ता को आत्म-संतोष मिलता है संयम और पर-सेवा से। सुयश तो बाहरी फूल है जो मिथ्या नाम-रूप का है; वह मिले या न मिले, मूल बात में कोई अंतर नहीं पड़ता। पूर्ण संयमी और सेवक सुयश की परवाह ही नहीं करता, अपितु उससे उदास रहता है। सुयश मिलने से कोई लाभ नहीं। सावधान न रहे तो अपने कल्पित नाम का सुयश सुनकर अहंकार जगेगा और अपनी हानि होगी।

सुयश अथवा स्व, कौन अधिक निकट है? उत्तर है 'स्व'। 'स्व' का अर्थ है खुद, सेल्फ, स्वत:, मैं। मैं ही अपने अधिक ही नहीं, अधिकतम निकट है। हमारे साथ दो 'मैं' हैं, एक औपाधिक, संबंधित एवं नकली, अतएव वह क्षणिक है। वह है शरीर और उसके नाम-रूप, गुण-कर्मों का समुच्चय। दूसरा मैं है मेरा स्व, आत्मा, चेतन। यही मेरा सच्चा 'मैं' है, स्व है। यही हमारे अधिकतम निकट है। निकट कहना भी एक विधा है। वस्तुत: स्व मैं है, मैं स्व है।

मेरे निकट 'सुयश' नहीं, 'स्व' है। 'सुयश' का तो जब स्मरण होता है कि मेरे नाम का सुयश हो रहा है, तब वह प्रतीत होता है जो क्षणिक याद तक है; किंतु 'स्व' तो जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति सबमें विद्यमान रहता है। जाग्रत का सारा व्यवहार स्व के साक्षित्व में होता है, स्वप्न का सारा आभास स्व के साक्षित्व में होता है और सुषुप्ति का सारा आनंद स्व ही अनुभव करता है। इसलिए सुषुप्ति के बाद जागकर कहता है कि मैं बड़े सुख से सोया।

संयम और सेवा स्व को सुख देते हैं। सुयश तो उसका बाहरी फूल है, दिखावा है। वह सच्चे संयमी और सेवक के लिए निरर्थक है। अतएव सुयश बहुत दूर है, स्वप्नवत है, मिथ्या है, अनात्म है, अनित्य है; और स्व निकटतम है, आत्मा है, चेतन है, स्वरूप है, जिसमें अपनी चिर स्थिति होती है।

स्व अथवा संपत्ति, किसका अधिक मूल्य है? यहां संपत्ति का अर्थ है सांसारिक धन-दौलत। उसका मूल्य इतना ही है कि शरीर का निर्वाह हो जाये। इसके अलावा उसका मूल्य है दूसरे की यथाशक्ति सेवा होती रहे। खास उसका मूल्य शरीर-निर्वाह होना है। वस्तुत: अधिक मूल्य है स्व का। संपत्ति शरीर-निर्वाह के लिए है; शरीर-निर्वाह शरीर-रक्षा के लिए है; शरीर-रक्षा साधना के लिए है और मुख्य साधना है स्व में स्थित होना। अतएव सबका मूल्य है 'स्व' में परम विश्राम पा जाना।

स्व का अधिकतम मूल्य है, संपत्ति का नहीं। संपत्ति का लाक्षणिक अर्थ है अधिक धन। जो लोग कमाते-खाते हैं, वे संपत्ति वाले नहीं कहलाते; अपितु जिनके पास अतिरिक्त अधिक धन होता है, वे संपत्ति वाले कहलाते हैं। अतएव कहना चाहिए कि कल्याणार्थी के लिए स्व का मूल्य अधिक है, संपत्ति का थोड़ा मूल्य है जिससे जीवन-निर्वाह हो जाये।

जीत अथवा हार कौन बड़ी बुराई है? जहां अस्त्र-शस्त्र से लड़ाई होती है, वहां हारने वाला दुखी होता ही है, जीतने वाला भी संतापित होता है। इस तथ्य को महाभारत को पढ़कर भी जाना जा सकता है। जब दुर्योधन अधमरे होकर पृथ्वी पर गिरे कराह रहे थे, तब युधिष्ठिर ने कहा, "राजन! तुम अकेले सुखी हो, निश्चय ही स्वर्ग में तुमको स्थान प्राप्त होगा और हमें यहां नरक तुल्य दारुण दुख भोगना पड़ेगा। भला, मैं भाइयों और पुत्रों की उन शोक-विह्वला और दुख में डूबी हुई विधवाओं को कैसे देख सकूंगा?"[1] युद्ध समाप्त होने पर जब गांधारी ने कहा, "कहां है युधिष्ठिर?" तब, "यह सुनकर महाराज युधिष्ठर कांपते हुए हाथ जोड़े उनके सामने आये और बड़ी मीठी वाणी में बोले, देवि! आपके पुत्रों का संहार करनेवाला क्रूरकर्मा युधिष्ठिर मैं हूं। पृथ्वी भर के राजाओं

---

1. महाभारत, शल्यपर्व, अध्याय 59, श्लोक 29, 28।

का विनाश करने में मैं ही हेतु हूं। इसलिए शाप के योग्य हूं। आप मुझे शाप दे दीजिए। मैं अपने सुहृदों का द्रोही और अविवेकी हूं। वैसे-वैसे श्रेष्ठ सुहृदों का वध करके अब मुझे जीवन, राज्य अथवा धन से कोई प्रयोजन नहीं है।''[1]

युधिष्ठिर अन्यत्र भी उत्तप्त होकर कहते हैं, ''हम लोग लोभ और मोह के कारण राज्यलोभ के सुख का अनुभव करने की इच्छा से दंभ और अभिमान का आश्रय लेकर इस दुर्दशा में फंस गये हैं। हाय, हम लोगों ने इस तुच्छ पृथ्वी के लिए अवध्य राजाओं की भी हत्या की और अब उन्हें छोड़कर बंधु-बांधवों से हीन हो अर्थ-भ्रष्ट की भांति जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जिस प्रकार मांस के लोभी कुत्तों को अशुभ की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार राज्य में आसक्त हुए हम लोगों को भी अनिष्ट प्राप्त हुआ है। अत: हमारे लिए मांस-तुल्य राज्य को पाना अभीष्ट नहीं है। इसका परित्याग ही अभीष्ट होना चाहिए।[2] हमने शूरवीरों को मारा, पाप किया और अपने देश का विनाश कर डाला। शत्रुओं को मारकर हमारा क्रोध तो दूर हो गया, परंतु यह शोक मुझे निरंतर घेरे रहता है। अर्जुन! यदि हम लोग वृष्णिवंशी तथा अंधकवंशी क्षत्रियों की नगरी द्वारका में जाकर भीख मांगते हुए अपना जीवन-निर्वाह कर लेते तो आज अपने कुटुंब को निर्वंश करके हम इस दुर्दशा को प्राप्त नहीं होते।''[3]

युधिष्ठिर राजगद्दी पर बैठ चुके हैं। भीष्म जी शय्या पर पड़े हैं और युधिष्ठिर को राजधर्म का उपदेश कर रहे हैं। बीच मेें युधिष्ठिर बोल पड़े, ''जिसमें धर्म नहीं है, उस राज्य से हमें क्या लेना है? अत: मैं अब धर्म करने की इच्छा से वन में ही चला जाऊंगा। वहां वन के पावन प्रदेशों में हिंसा का सर्वथा त्याग कर दूंगा और जितेंद्रिय हो मुनिव्रत से रहकर फलमूल का आहार करते हुए धर्म की आराधना करूंगा।''[4]

स्त्रीपर्व अध्याय पांच में गांधारी विलाप करती हुई रोषपूर्वक श्रीकृष्ण से कहती हैं, ''तू कौरव-पांडव को बलपूर्वक समझाकर ठीक रखने में समर्थ था, परंतु तूने यह नहीं किया। कौरव-पांडव के आपस में कटकर मरने की तूने उपेक्षा कर दी। आज से छत्तीस वर्ष बाद तेरा यदुकुल भी इसी प्रकार परस्पर कटकर मर जायेगा और तू सबसे अपरिचित तथा लोगों की आंखों से ओझल होकर अनाथ के समान वन में विचरेगा और किसी निंदित उपाय से तेरी मृत्यु होगी। भरतवंश की इन स्त्रियों के समान तेरे कुल की स्त्रियां भी पुत्रों तथा

---

1. **महाभारत, स्त्रीपर्व, अध्याय 15, श्लोक 25, 26, 27।**
2. **महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 7, श्लोक 7, 9, 10।**
3. **महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 7, श्लोक 35, 3।**
4. **महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 75, श्लोक 16,17।**

भाई-बंधुओं के मारे जाने पर इसी तरह संगे-संबंधियों की लाशों पर गिरेंगी।''

अंततः भरतवंश की अधिक विधवा स्त्रियां पतियों की लाशों के साथ जल गयीं और अधिकतम जल में गोता लगाकर डूब मरीं। जब युधिष्ठिर विजय कर राजधानी में आये, तब एक ब्राह्मण ने कहा, ''राजन! ये सब ब्राह्मण मुझ पर अपनी बात कहने का भार रखकर मेरे द्वारा ही तुमसे कह रहे हैं—''कुंतीनंदन! तुम अपने भाई-बंधुओं का वध करनेवाले एक दुष्ट राजा हो। तुम्हें धिक्कार है। ऐसे पुरुष को जीवन से क्या लाभ? इस प्रकार यह बंधु-बांधवों का विनाश करके गुरुजनों की हत्या करवाकर तो तुम्हारा मर जाना ही अच्छा है। जीवित रहना नहीं।''[1] उक्त बातें सुनकर युधिष्ठिर तथा उनके साथी उद्वेगित तथा लज्जित हो गये और हतप्रभ होकर कुछ बोल न सके। फिर धीरज धरकर युधिष्ठिर ने कहा, ''ब्राह्मणो! मैं आपके चरणों में प्रणाम करके विनीत भाव से यह प्रार्थना करता हूं कि आप लोग मुझ पर प्रसन्न हों। इस समय मुझ पर सब ओर से बड़ी भारी विपत्ति आ गयी है। आप लोग मुझे धिक्कार न दें।''[2] युद्ध में पुत्रों-परिजनों के मारे जाने के बाद धृतराष्ट्र तथा गांधारी शोक-विह्वल वन में तप करने चले गये। तप से उनके शरीर दुर्बल थे, वृद्ध थे ही। दावाग्नि की चपेट में आ गये, भाग न सके और जलकर मर गये। यह बात जब पांडव सुने तो वे घोर विलाप किये। युधिष्ठिर ने कहा, ''हमारे इस राज्य को धिक्कार है, बल और पराक्रम को धिक्कार है जिससे आज हम लोग मृत-तुल्य बनकर जीवन बिता रहे हैं—

धिग् राजमिदमस्माकं धिग् बलं धिक् पराक्रमम्।
क्षत्रधर्मं च धिग् यस्मान्मृता जीवामहे वयम्H

(महाभारत, आश्रमवासपर्व, अध्याय 38, श्लोक 8)

हिटलर के आतंक से महान वैज्ञानिक आईंस्टीन जर्मनी छोड़कर अमेरिका चले गये। उन्होंने अमेरिका के राष्ट्रपति से कहा कि परमाणु-शक्ति का मैं सूत्र बनाकर दे सकता हूं यदि उसका कल्याणकारी कार्य में प्रयोग किया जाये। राष्ट्रपति ने स्वीकार किया। आईंस्टीन ने परमाणु ऊर्जा का सूत्र दिया। परंतु राष्ट्रपति ने उसका दुरुपयोग किया और उस सूत्र से अपने वैज्ञानिकों से परमाणु बम बनवाया और जापान के नागासाकी तथा हिरोशिमा दो नगरों पर उन्हें गिराया। लाखों लोग मरे। यह सब जानकर आईंस्टीन को महा संताप हुआ। तब से उन्होंने राजनेताओं से मिलना छोड़ दिया। उन्होंने मरते समय कहा था कि यदि मैं फिर से जन्म लूं तो वैज्ञानिक नहीं बनना चाहूंगा।

---

1. **महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 38, श्लोक 26, 27।**
2. **महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 38, श्लोक 30।**

जीत अथवा हार, कौन बड़ी बुराई है? अस्त्र-शस्त्र के द्वारा होने वाले युद्ध में जीते हुए की स्थिति ऊपर देख ली गयी। हारनेवाला दुखी होता ही है, किंतु जीतने वाले की दशा और बदतर होती है।

जीवन के रात-दिन के व्यवहार में जो आसपास के मनुष्यों तथा मिलने वाले लोगों से बातचीत होती है, उसमें अपनी जीत दर्ज कराने की इच्छा बड़ी बुराई है। सबसे हार जाना सच्चा अध्यात्म है। विवाद में जीतने की इच्छा अंतर्यात्रा के विरुद्ध है।

जो अन्य वस्तुओं के पीछे भागता है, वह निश्चय ही महान उपलब्धि से चूकता है। महान उपलब्धि है वासना-शून्य होकर आत्मलीन हो जाना और व्यवहार काल में मन में कोई विकार न रहना, सब समय अनात्म का अभाव और आत्म-भाव बना रहना। यही निर्भय स्थिति है। यह स्थिति उसको नहीं मिल सकती जो अन्य वस्तुओं के पीछे भागता है। अन्य वस्तुएं अनात्म वस्तुएं हैं। स्व आत्म-सत्ता से भिन्न सब अनात्म है, अनित्य है, सदा के लिए छूट जाने वाला है। इनको पाने की इच्छा में जो इनके पीछे भागता है, वह प्रगाढ़ आत्मस्थिति नहीं पा सकता।

जो वस्तुओं के अधिकाधिक संग्रह में पड़ता है; निश्चय ही वह महत्त्वपूर्ण वस्तु से वंचित रह जाता है। जीवन-निर्वाह के लिए कुछ वस्तुओं की आवश्यकता सबको है। विवेकवान यथाप्राप्त में संतोष रखता है। वह वस्तुओं को बटोरने की तृष्णा में नहीं पड़ता; अपितु जो सहज रूप में आता है उसमें संतोष रखता है। जिसे सांसारिक वस्तुओं की लालसा है और उनके संग्रह में रस लगता है, वह महत्त्वपूर्ण वस्तु से वंचित रह जायेगा। महत्त्वपूर्ण वस्तु है गहरी शांति, अगाध अमृत पद, निर्भय स्वरूपस्थिति। अनात्म वस्तुओं में मन लगाने वाला आत्मा में नहीं ठहर सकता।

जो आत्मसंतुष्ट है, वह लज्जित नहीं होता। लज्जित वह होता है जो मन-इंद्रियों की लंपटता में बहता है। क्योंकि उससे खोटे कर्म हो जाते हैं, खोटी वाणी निकल जाती है। जो आत्मसंतुष्ट है, अपने आप में तृप्त है, उससे न खोटे विचार होंगे, न खोटे उच्चार होंगे और न खोटे आचार होंगे। इसलिए उसको लज्जित होने का अवसर नहीं आयेगा।

जो संयम करना जानता है, वह खतरे में नहीं पड़ता, और वह सदैव के लिए सुरक्षित हो जाता है। जो मनुष्य भोजन करते समय जानता है कि कब रुक जाना चाहिए, वह न अधिक खायेगा और न उसे अधिक खाने के परिणाम में होने वाले दुख, व्याधि आदि होंगे। जो बात करते समय सावधान रहेगा और अपनी वाणी में संयम रखेगा, वह बातचीत के खतरे में नहीं पड़ेगा। इसी प्रकार हर क्षेत्र में समझ लें। मन और इंद्रियों का पूर्णरूपेण अपने वश में हो जाना

पूर्ण संयम है। यह स्थिति जिसकी सिद्ध हो गयी, वह सब खतरे से बरी हो गया, और वह आगे सदा के लिए सुरक्षित हो गया। जिसका बाहरी आकर्षण सर्वथा समाप्त हो गया, वह पूर्ण आत्मतृप्त एवं कृतकृत्य हो जाता है। अतएव वह आज मुक्त है और देह-पात-पश्चात भी सदैव के लिए मुक्त है। जिसके मन में दुनिया का आकर्षण नहीं रह गया, वह दुनिया में नहीं आयेगा और वह कभी इस भवाटवी संसार में नहीं भटकेगा। वह सदा आत्मस्थ मुक्त स्वरूप है।